

अप्रैल-जून  
April-June

अंक : 103

2020

ISSN : 0976-0024

महिला  
Mahila

# विधि भारती Vidhi Bharati

विधि चेतना की द्विभाषिक (हिंदी-अंग्रेज़ी) शोध पत्रिका  
Research (Hindi-English) Quarterly Law Journal

(केंद्रीय हिंदी निदेशालय, मानव संसाधन विकास मंत्रालय के आंशिक अनुदान से प्रकाशित)

ISSN 0976-0024



प्रधान संपादक  
सन्तोष खन्ना  
संपादक  
डॉ. उषा देव

पत्रिका में व्यक्त विचारों से सम्पादक/परिषद् की सहमति आवश्यक नहीं है।

Indexed at Indian Documentation Service, Gurugram, India

Citation No. MVB-25-26/2020



## विधि भारती परिषद्

बी.एच./48 (पूर्वी) शालीमार बाग, दिल्ली-110088 (भारत)

मोबाइल : 09899651872, 09899651272

फ़ोन : 011-27491549, 011-45579335

E-mail : vidhibharatiparishad@hotmail.com, santoshkhanna25@gmail.com

Website : www.vidhibharatiparishad.in

अंक-103 / महिला विधि भारती : : 103

## ‘महिला विधि भारती’ पत्रिका

विधि चेतना की द्विभाषिक (हिंदी-अंग्रेज़ी) विधि-शोध त्रैमासिक पत्रिका

**E-mail :** vidhibharatiparishad@hotmail.com

**Website :** www.vidhibharatiparishad.in

**अंक :** 103 (अप्रैल-जून, 2020)

**प्रधान संपादक :** सन्तोष खन्ना, **संपादक :** डॉ. उषा देव

### बोर्ड ऑफ रेफरीज एवं परामर्श मंडल

1. डॉ. के.पी.एस. महलवार : चेयर प्रो., प्रोफेशनल एथिक्स, नेशनल लॉ यूनिवर्सिटी, न.दि.
2. डॉ. चंदन बाला : डीन एवं विभागाध्यक्ष, विधि विभाग, जयनारायण व्यास वि.वि., जोधपुर
3. डॉ. राकेश कुमार सिंह : पूर्व डीन एवं विभागाध्यक्ष, फैकल्टी ऑफ लॉ, लखनऊ विश्वविद्यालय
4. डॉ. किरण गुप्ता : पूर्व डीन एवं विभागाध्यक्ष, फैकल्टी ऑफ लॉ, दिल्ली विश्वविद्यालय
5. न्यायमूर्ति श्री एस.एन. कपूर : पूर्व न्यायाधीश, दिल्ली उच्च न्यायालय, पूर्व सदस्य, राष्ट्रीय उपभोक्ता आयोग, नई दिल्ली।
6. प्रो. (डॉ.) सिद्धनाथ सिंह : पूर्व डीन एवं विभागाध्यक्ष, विधि विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय
7. प्रो. (डॉ.) गुरजीत सिंह : संस्थापक वाइस चांसलर, नेशनल लॉ यूनिवर्सिटी एवं न्यायिक अकादमी, असम
8. श्री हरनाम दास टक्कर : पूर्व निदेशक, लोक सभा सचिवालय, नई दिल्ली

### परिषद् की कार्यकारिणी, संरक्षक : डॉ. राजीव खन्ना

- |   |                                      |
|---|--------------------------------------|
| 1. डॉ. सुभाष कश्यप (अध्यक्ष)                    | 9. श्री जी.आर. गुप्ता (सदस्य)        |
| 2. न्यायमूर्ति श्री लोकेश्वर प्रसाद (उपाध्यक्ष) | 10. डॉ. उषा टंडन (सदस्य)             |
| 3. श्रीमती सन्तोष खन्ना (महासचिव)               | 11. डॉ. सूरत सिंह (सदस्य)            |
| 4. रेनू नूर (कोषाध्यक्ष)                        | 12. डॉ. के.एस. भाटी (सदस्य)          |
| 5. श्री अनिल गोयल (सचिव, प्रचार)                | 13. डॉ. शकुंतला कालरा (सदस्य)        |
| 6. डॉ. प्रवेश सक्सेना (सदस्य)                   | 14. डॉ. एच. बालसुब्रह्मण्यम् (सदस्य) |
| 7. डॉ. आशु खन्ना (सदस्य)                        | 15. डॉ. उमाकांत खुवालकर (सदस्य)      |
| 8. डॉ. पूरनचंद टंडन (सदस्य)                     | 16. अनुरागेंद्र निगम (सदस्य)         |

### शुल्क दर

वार्षिक शुल्क 500/-- रुपए

आजीवन शुल्क 5,000/-- रुपए

संस्थागत वार्षिक शुल्क 500/-- रुपए

संस्थागत आजीवन शुल्क 20,000/-- रुपए

### डाक शुल्क अलग

## अंक 103 में

1. संपादकीय / सन्तोष खन्ना -- 107
2. भारत के संविधान और मौलिक कर्तव्य / हर्ष वनसोडे एवं कर्ण बगोरा -- 111
3. भारत में लैंगिक असमानता : वैश्विक लैंगिक अंतराल सूचकांक, 2020 / डॉ. फरहत खान -- 116
4. संसद और हिंदी के अच्छे दिन : एक रिपोर्ट / सन्तोष खन्ना -- 122
5. भारतीय न्यायालयों एवं कारावासों पर अतिभार / डॉ. जयश्री नदेश्वर -- 123
6. भारत में गरीबी उन्मूलन : सामाजिक क़ानूनी पहलू / प्रो. जयप्रकाश आर्य -- 127
7. प्रतिलिप्यधिकार अधिनियम पर इंटरनेट पायरेसी के प्रभाव और कोविड-19 / श्रीमती नीतिनिपुणा सक्सेना -- 131
8. उत्तराखंड के ग्रामीण क्षेत्रों में ऑन लाइन शिक्षा की चुनौती / डॉ. मंजू चंद्रा -- 137
9. भारतीय संविधान में आरक्षण व बाबा साहब अंबेडकर / संतोष बंसल रिपोर्ट -- 142
10. कोविड-19 संकट और प्रवासी मजदूरों की समस्याएँ / डॉ. निशा केवलिया शर्मा -- 147
11. घरेलू हिंसा के आयाम और कोविड-19 / डॉ. सुनीता श्रीवास्तव -- 150
12. विधि, न्याय तथा न्यायिक प्रक्रिया / सत्यम चंसोरिया -- 156
13. कोरोना महामारी भारत में विधिक विनियमन / डॉ. शीतल प्रसाद मीना -- 160
14. 'काब्य मंथन' संगोष्ठी विधि भारती परिषद् / अरविंद भारत -- 169
15. A cursory Study of Liability of Internet Service Providers Under I.T. Act, 2000 / Poonam Pant and Bhumika Sharma -- 171
16. The Union and The State Relationship – An Elementary Knowledge about the role of their working and functions including the current Fiscal Scenario of National Unity by COVID-19 / Shivangi Pawar -- 180
17. Constitutionality of Delegated Legislation in India / .....Name -- 188
18. Juvenile Justice System in India / Richa Shrivastava -- 195

## लेखक मंडल

हर्ष वनसोडे एवं कर्ण बगोरा : अधिवक्ता

डॉ. फरहत खान : प्राध्यापक (प्राचार्य), रेनेसाँ विधि महाविद्यालय, इंदौर

सन्तोष खन्ना : प्रधान संपादक, 'महिला विधि भारती', त्रैमासिक पत्रिका। संसदीय अधिकारी (सेवा-निवृत्त) एवं सदस्य (सेवा-निवृत्त) जिला उपभोक्ता फोरम, राष्ट्रीय राजधानी, दिल्ली।

डॉ. जयश्री नदेश्वर : 123

**Dr. Jai Pal Arya** : Associate Professor & Law, Chanderprabhu Jain College of Higher Studies & School of Law, Plot No & OCF, Sector A&8, Narela, Delhi-110040, Mobile :+91-9868501617, 7011822582,

Tele : +91-11- 27284333/34 (Ext. 521), Toll Free No : 1800117677

श्रीमती नीतिनिपुणा सक्सेना : सहायक प्राध्यापक विधि, इंस्टीट्यूट ऑफ लॉ एंड लीगल स्टडीज, सेज यूनिवर्सिटी, इंदौर, (मध्य प्रदेश)

डॉ. मंजू चंद्रा : असिस्टेंट प्रोफेसर, राजनीति विज्ञान, राजकीय महाविद्यालय, गुरुडाबांज, अल्मोड़ा, उत्तराखंड

संतोष बंसल : A 1/ 7 मियाँवाली नगर, पश्चिम विहार, दिल्ली-110087

मोबाइल : 8860022613

डॉ. निशा केवलिया शर्मा : प्रिंसीपल, विधि विभाग, सोज यूनिवर्सिटी, इंदौर (मध्य प्रदेश)

डॉ. सुनीता श्रीवास्तव : एसोसिएट प्रोफेसर, सेज विश्वविद्यालय, इंदौर (मध्य प्रदेश)

सत्यम चंसोरिया : शोधार्थी, जीवाजी विश्वविद्यालय, ग्वालियर (मध्य प्रदेश)

डॉ. शीतल प्रसाद मीना : असिस्टेंट प्रोफेसर, विधि संकाय, जय नारायण व्यास विश्वविद्यालय, जोधपुर, मोबाइल : 9414283912, ई-मेल : spmeenalaw@gmail.com

अरविंद भारत : संपादक : अखंड भारत त्रैमासिक पत्रिका

**Poonam Pant** : Assistant Professor, L.R. Institute of Legal Studies, Solan, (Himachal Pradesh)

**Bhumika Sharma** : Advocate, District and Sessions Court, Solan, H.P.

**Shivangi Pawar** : 180

**Prema Pandey** : Assistant professor, Shri Vaishnav Institute of Law, Indore (M.P.)

**Richa Shrivastava** : Assistant professor, University Institute of Law and Legal studies, Sage University Indore (M.P.)

**E-mail** : rshrivastava673@gmail.com

## संपादकीय

---

भारत के लिए और विश्व के लिए भी वर्ष 2020 परीक्षाओं का वर्ष बना रह गया। भारत की स्थिति अन्य देशों से इसलिए भिन्न है कि यह एक विशाल देश है जिसकी विश्व में चीन को छोड़ कर सब से अधिक जनसंख्या है। अब तक के आँकड़ों के अनुसार यह जनसंख्या 135 करोड़ हो चुकी है और आज भी बेतहाशी बढ़ती जा रही है। भारत एक विकासशील देश है यद्यपि वह प्रगति के कई सोपान पार करता जा रहा था परंतु फिर भी देश में गरीबी, बेरोजगारी, आतंकवाद, नक्सलवाद और अनेक समस्याएँ काफी सीमा तक उसके आगे बढ़ते चरणों में बेड़ियाँ बनने का उपक्रम करती जाती थीं। इन समस्याओं का सामना देश कर ही रहा था कि कोविड-19 जैसी महामारी ने भी भारत में अपने पाँव फैलाने आरंभ कर दिए। इस महामारी की भयंकरता को देखते हुए यह लग रहा था कि क्या भारत वर्तमान कानूनों के सहारे इस महा समस्या का मुकाबला कर पाएगा? महामारी संबंधी भारत का कानून 1897 में बना था जो केवल पाँच धाराओं से लेस था। मार्च, 2020 में कोविड-19 की महामारी पर नियंत्रण के लिए लॉकडाउन लगाने से पहले नागरिकता कानून के विरुद्ध देश में बड़े पैमाने पर धरने-प्रदर्शन चल रहे थे। ऐसी स्थिति में ऐसा लग रहा था कि इस महामारी से निपटने के लिए देश में आंतरिक आपात स्थिति लगानी पड़ सकती है अथवा किसी प्रकार के अध्यादेश जारी किए जा सकते हैं।

जिस प्रकार से लॉकडाउन के प्रथम चरण में कुछ लोग अपनी अज्ञानतावश चिकित्सा कर्मियों को पत्थरबाजी आदि से अपनी हिंसा का शिकार बना रहे थे और समझाने के बावजूद प्रवासी मजदूर गाँवों में वापस जाने के लिए सड़कों पर निकल आए थे, इस अफरा-तफरी के माहौल में स्थिति से सामान्य तरीके से निपटना सुगम नहीं था। यही नहीं, प्रकृति ने भी अपने कोप के कई रंगों का प्रदर्शन किया, बंगाल और उड़ीसा में आए समुद्री तूफान ने भयंकर तबाही मचाई तो बाद में मुंबई में भी समुद्री तूफान ने अपने कई-कई रंग दिखाए, किंतु इस बात का श्रेय तो भारत के नेतृत्व और भारत की जनता को जाता है कि नेतृत्व ने अपने धैर्य, सूझबूझ और संवेदनशीलता से बिना घबराए-हड़बड़ाए स्थितियों को संभालने का जो कौशल दिखाया, वह स्वयं में विरल है और न्यूनाधिक रूप में जनता ने अनुशासन, संयम और संकल्प का प्रदर्शन करते हुए यह दिखा दिया कि मनुष्य चाहे तो साहस से बड़ी-से-बड़ी विपदा का सामना किया जा सकता है। भारत ने विपदा की इस स्थिति में सिद्ध कर दिया कि नेतृत्व

चाहे तो भारत के संविधान के आपात् स्थिति संबंधी प्रावधानों के उपयोग के बिना ही देश का सफल संचालन कर सकता है और लगभग इन चार महीनों में देश ने संविधान और वर्तमान कानूनी व्यवस्था के अंतर्गत समस्याओं से निपटने का प्रयास किया है।

भारत केवल कोविड-19 की महामारी से ही नहीं लड़ रहा था बल्कि हमारे मित्र कहे जाने वाले चीन ने पहले की भाँति भारत की पीठ में पुनः छुरा घोंपने का प्रयास किया और वह लद्दाख में कुछ स्थानों की सीमाओं का अतिक्रमण कर देश के लिए बहुत बड़ा सिर दर्द साबित होने का बराबर प्रयास कर रहा है, इस तनाव के कारण सीमा पर एक झड़प के दौरान भारत को अपने 20 सैनिकों की शहादत देनी पड़ी है। कुल मिला कर इस दौरान ऐसा माहौल बन गया है कि चीन के साथ कभी भी युद्ध छिड़ सकता है परंतु यहाँ भारत का नेतृत्व अपनी सूझबूझ से अभी तक स्थिति को संभाले है। देश की अखंडता सुनिश्चित करने के लिए युद्ध करना पड़े तो भारत उसके लिए एकदम तैयार है। परंतु सब जानते हैं कि युद्ध करना सुगम है परंतु शांति से समस्याओं को सुलझाना मुश्किल होता है। वर्तमान युद्ध पुराने युद्धों की तरह नहीं लड़े जाते, उसमें दोनों ओर के लोगों के लिए विनाश की ऐसी इबारत लिखी जाती है जो मानवता को आगे बढ़ने के स्थान पर सदियों पीछे धकेल देती है। युद्ध अगर किसी समस्या के समाधान होते तो आज विश्व में शांति का साम्राज्य होता। वैसे भी वर्तमान विश्व ने विध्वंसक परमाणु शस्त्रों के इतने ज़खीरे जमा कर लिए हैं कि जो तत्क्षण समूची पृथ्वी को नष्ट कर सकते हैं, ऐसे युद्ध कितने विनाशकारी हो सकते हैं उसकी कल्पना करना भी संभव नहीं है। फिर भी अगर भारत पर युद्ध थोपा जाता है तो संपूर्ण भारत इस मोर्चे पर लोहा लेने के लिए तैयार है।

यद्यपि लॉकडाउन से जीवन अस्त-व्यस्त हो जाता है, काम-धंधे बंद होने से देश को आर्थिक रूप से बहुत हानि होती है, ऐसे में 135 करोड़ जनसंख्या के जीवन की रक्षा दांव पर लगी थी जिसका उस समय एकमात्र उपाय लॉकडाउन ही था। देश की सरकारों को यह भी सुनिश्चित करना था कि जनता को कम-से-कम कष्ट भोगने पड़े, यह महाकार्य सुगम नहीं था किंतु इस प्रकार के अथक प्रयास किए गए कि गरीबों तक धनराशि तो पहुँचे ही, उन्हें व्यवस्थित रूप से राशन की मुफ्त सप्लाई की गई ताकि किसी के भूख से मरने की नौबत न आए। लॉकडाउन के 69 दिनों में समूचे देश में सरकारी स्तर पर और संस्थानों और व्यक्तियों के स्तर पर सब को भोजन उपलब्ध कराने के भरसक प्रयास किए गए।

मई का माह आरंभ होते ही प्रवासी मजदूरों को सब राज्यों से उनके गाँवों में पहुँचाने का प्रयास किया गया। कोरोना कहर के दौरान उन्हें केवल उनके गाँवों तक पहुँचाना ही नहीं था बल्कि उनके कोरोना टेस्ट कर उनके क्वारंटीन की व्यवस्था करना और उस पर उनके खाने-पीने आदि की व्यवस्था भी शामिल था। देश के रेल विभाग ने सैकड़ों रेलें चला कर या राज्यों ने बसों से उन्हें घर पहुँचाया। यही नहीं, देश के कई भागों में रह रहे छात्रों को भी उनके घर पहुँचाया गया। देश की विपुल जनसंख्या को उनके घरों तक पहुँचाना वस्तुतः एक

बहुत बड़ा कार्य था।

देश के लॉकडाउन के दौरान तो कोरोना संक्रमण काफी सीमा तक नियंत्रण में था परंतु मई मध्य से जैसे-जैसे बड़ी जनसंख्या का एक स्थान से दूसरे स्थान पर स्थानांतरित किया गया और जून से जैसे-जैसे लॉकडाउन को धीरे-धीरे खोलने की प्रक्रिया प्रारंभ हुई, कोरोना संक्रमण के मामलों में भी उछाल आना आरंभ हो गया। यद्यपि केंद्र और राज्य सरकारों ने कोरोना संक्रमित लोगों के लिए चिकित्सा और उपचार सुविधाएँ काफी सीमा तक बढ़ा दीं फिर भी कहीं-कहीं अस्पतालों और कोविड केंद्रों में कई व्यतिक्रम भी देखने में आए। एक अच्छी बात यह रही कि भारत में कोरोना के काफी मामलों में लोग कोरोना को हराने में सफल रहे।

कोरोना वायरस समूचे विश्व के लिए एक चुनौती बन चुका है। काफी समय तक आर्थिक गतिविधियों पर लगे विराम के कारण देश के काफी लोगों के काम-धंधे बंद पड़े हैं। यद्यपि सरकार दो बार आर्थिक पैकेज दे चुकी है किंतु जो काम-धंधे पुनः आरंभ किए जा रहे हैं, उन्हें सामान्य होने में अभी काफी समय लग सकता है। वस्तुतः स्थिति तो यह है कि इस समय अर्थव्यवस्था और कारोबार की नींव डगमगा गई है। लॉकडाउन के चलते देश के सभी बड़े उद्योग बंद करने पड़े हैं। सभी प्रकार का आयात-निर्यात भी प्रभावित हुआ है। भारत में इस बीच बहुत सारे लोगों की नौकरियाँ चली गई हैं। आर्थिक मोर्चे पर भी सरकार को सूझबूझ के साथ लोगों की सहायता के लिए आगे आना चाहिए।

भविष्य में कोरोना क्या रूप लेगा अभी कहना कठिन है। अगर उसके संक्रमण में कमी आएगी तो आर्थिक गतिविधियाँ सामान्य होंगी। आर्थिक धरातल पर अब कई चुनौतियों का सामना करना पड़ सकता है। अभी तक तो सरकार और जनता ने संविधान और वर्तमान कानून व्यवस्था के अनुसार विपदाओं का सामना कर लिया है, क्या भविष्य में भी ऐसा संभव होगा। भारत एक लोकतांत्रिक देश है और अभी तक समस्याओं का समाधान लोकतांत्रिक प्रतिमानों के अनुसार किया गया है जबकि विश्व के कुछ साधन संपन्न और छोटे देशों में आपात् स्थिति लगाई गई।

भारत को इस समय दो-दो मोर्चों पर लड़ना पड़ रहा है। एक तो कोरोना से युद्ध क्योंकि कहा यह भी जा रहा है कि जब तक कोरोना की कोई वेक्सीन नहीं आती, तब तक कोरोना से जान छुड़ाना मुश्किल है। वैसे अन्य देशों की तरह भारत भी कोरोना पर नियंत्रण के लिए वेक्सीन बनाने के लिए जोर-शोर से तैयारी कर रहा है। कोरोना की वेक्सीन बन भी जाएगी और हो सकता है कि भारत भी इसमें कामयाब हो जाए परंतु जैसा कि पहले कहा जा चुका है चीन के कारण भारत की सीमाओं पर बढ़ते तनाव के बावजूद चीन जैसे देश कोई भी सीख लेने के लिए तैयार नजर नहीं आते कि क्या इस समस्या को देखते हुए सब को अपनी जन-स्वास्थ्य सेवाओं को सुदृढ़ करने पर ध्यान देना चाहिए, न कि युद्ध के लिए हथियारों के परीक्षण और रक्षा बजट में बढ़ोत्तरी पर जबकि सब राष्ट्र जान चुके हैं कि कोरोना के कहर के आगे परमाणु बमों के जखीरे धरे-के-धरे रह गए। भारत को नापाक पाकिस्तान और चीन

के कारण अपनी सुरक्षा के लिए आधुनिकतम हथियारों आदि की व्यवस्था के लिए बाध्य होना पड़ रहा है परंतु देश का नेतृत्व और देश की जनता इन सब चुनौतियों का सामना करने में सक्षम हो जाएगी, ऐसी आशा की जानी चाहिए।

कोरोना की भयावहता को रेखांकित करते हुए उप-राष्ट्रपति श्री नायडू ने लिखा है कि कोरोना सिर्फ व्यक्ति के निजी जीवन के लिए ही नहीं, सभ्यता के लिए भी चुनौती है। वर्तमान सभ्यता को बचाने के लिए नए मूल्य और मानदंड अपनाने होंगे। उनकी इस बात में यह भी जोड़ा जा सकता है कि विश्व को युद्ध से बचाना होगा, युद्ध होगा तो सभ्यता ही नहीं बचेगी।

कोरोना काल के पहले और अब भी बहुत सारे देश अधिनायकवादी प्रवृत्तियों की ओर बढ़ गए हैं या बढ़ रहे हैं। चीन एक ऐसा तानाशाह देश है जिसने अपने यहाँ कोरोना वायरस को जाने-अनजाने विश्व के देशों में बिना किसी चेतावनी के छोड़ दिया जिसके कारण विश्व में करोड़ों लोग कोरोना संक्रमित हो रहे हैं और कई लाख लोग अपनी जान गँवा चुके हैं और हर देश की अर्थव्यवस्था चरमरा गई है किंतु चीन न केवल भारत की सीमाओं पर खुराफात कर रहा है बल्कि कई अन्य देशों का सिर दर्द भी बना हुआ है। आतंकवाद का भी अभी सिर कुचला नहीं जा सका है। अब समाज में हिंसा का बोलबाला है और कई प्रकार की समस्या का विश्व सामना कर रहा है।

कोरोना महामारी के बढ़ते संक्रमण और अस्त होती अर्थ-व्यवस्थाओं के कारण सभी वर्तमान राजनीतिक व्यवस्थाएँ, चाहे वह तानाशाही हो या लोकतंत्र, सभी के अस्तित्व पर खतरा मँडरा रहा है। कोरोना महामारी पर देर-सवेर नियंत्रण कर लिया जाएगा परंतु ध्वस्त अर्थ-व्यवस्थाओं को संभालना सुगम नहीं होगा। पिछले कुछ दशकों में पूरे विश्व में उदारवाद और भोगवाद में आए उछाल से जो व्यवस्था बनी थी, अब उसे पुनः स्थापित करना संभव नहीं होगा। यदि विश्व इस खूबसूरत पृथ्वी ग्रह को बचाना चाहता है तो उसे प्रकृति को पहले की तरह बरबाद नहीं, बल्कि उसका सामान कर उसके अब तक के जख्मों को सिलना होगा तभी मानवता का अस्तित्व बना रह सकता है।

ऐसी स्थितियों में भारत की भूमिका बहुत महत्वपूर्ण हो जाती है। कोविड-19 के विरुद्ध लड़ाई में भारत ने अपने संयम और संकल्प से समूचे विश्व के समक्ष एक उदाहरण पेश किया है, इसलिए दुनिया के देश भारत की तरफ आशा की दृष्टि लगाए हुए हैं। विश्व के लिए आने वाला दशक एक निर्णायक मोड़ प्रस्तुत कर सकता है। भारत ने अर्थ-व्यवस्था के इस घटा-टोप में आत्म-निर्भर होने का सही और सार्थक फैसला लिया है, इससे विश्व को भी एक नई सोच और एक नई दिशा मिलेगी।

□



## हर्ष बनसोडे एवं करण बगोरा

### भारत का संविधान और मौलिक कर्तव्य

भारत विश्व की सबसे पुरानी सभ्यताओं में से एक है। भारत एक लोकतंत्रिक देश है जहा इसके नागरिक स्वतंत्र रूप से रहते हैं लेकिन उनके देश के प्रति उनके बहुत सारे अधिकार और जिम्मेदारियाँ हैं। अधिकार और जिम्मेदारियाँ एक सिक्के के दो पहलू हैं। यदि हमारे अधिकार हैं तो हमारे पास उनकी जिम्मेदारियाँ भी होनी चाहिए। भारत के मूल संविधान में केवल अधिकारों को ही शामिल किया गया था जबकि मौलिक कर्तव्य प्रारंभ में संविधान में उल्लेखित नहीं थे। ऐसी आशा की जाती थी कि भारत के नागरिक स्वतंत्र भारत में अपने कर्तव्यों की पूर्ति स्वेच्छा से करेंगे किंतु 42वें संविधान संशोधन अधिनियम, 1976 द्वारा भाग 4(क) और अनुच्छेद 51(ए) जोड़ा गया जिसमें दस मौलिक कर्तव्यों का उल्लेख किया गया है। वास्तव में, कर्तव्य पालन से ही अधिकारों का जन्म होता है इसलिए गांधी जी का उद्देश्य था कि जो अपने कर्तव्यों का पालन करता रहता है अधिकार उसे स्वयं प्राप्त हो जाता है। आज हम जिन कर्तव्यों को पालन कर रहे हैं प्राचीनकाल से ही मनुष्य को उन कर्तव्यों का पालन करने की शिक्षा दी जाती रही है जैसे कि महाभारत के समय कौरवों व पांडवों की विशाल सेना आमने-सामने डटी हुई थी उस समय भगवान श्री कृष्ण ने अर्जुन को उसके कर्तव्यों का बोध कराया --

कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन ।

मा कर्मफलहेतुर्भूर्मा ते संगोऽस्त्वकर्मणि ॥

वास्तव में मनुष्य की स्वाभाविक प्रवृत्ति होती है कि वह अपने अधिकारों के प्रति अत्यधिक सजग रहता है परंतु कर्तव्य के प्रति उदासीन। मौलिक कर्तव्यों का संविधान में समावेश करने के लिए सरदार स्वर्ण सिंह की अध्यक्षता में समिति का गठन किया गया था।

- मौलिक कर्तव्य केवल भारतीय नागरिकों पर ही लागू होते हैं न कि किसी गैर-भारतीय पर।
- मौलिक कर्तव्यों के समावेश ने भारतीय संविधान को सार्वभौमिक मानव अधिकार घोषणा-पत्र (UDHR) और कई अन्य प्रदेशों के आधुनिक संविधान के अनुरूप कर दिया।
- अनुच्छेद 51ए के दस खंडों में से छह सकारात्मक कर्तव्य है और अन्य पाँच नकारात्मक कर्तव्य हैं।

यह मूल कर्तव्य मुख्यतः पूर्व सोवियत संघ के संविधान से प्रेरित थे। वर्ष 2002 में 86वें संविधान संशोधन के बाद मूल कर्तव्यों की संख्या ग्यारह हो गई जिसके अंतर्गत भारत के

प्रत्येक नागरिक का यह मूल कर्तव्य है कि --

- (क) संविधान का पालन करे और उसके आदर्शों, संस्थाओं, राष्ट्र ध्वज और राष्ट्रगान का आदर करे।
- (ख) स्वतंत्रता के लिए हमारे राष्ट्रीय आंदोलन को प्रेरित करने वाले उच्च आदर्शों को हृदय में सँजोए रखे और उनका पालन करे।
- (ग) भारत की संप्रभुता, एकता और अखंडता की रक्षा करे और उसे अक्षुण्ण रखे।
- (घ) देश की रक्षा करे और आह्वान किए जाने पर राष्ट्र की सेवा करे।
- (ङ) भारत के सभी लोगों में समरसता और समान भ्रातृत्व की भावना का निर्माण करे जो धर्म, भाषा और प्रदेश या वर्ग पर आधारित सभी भेदभाव से परे हो, ऐसी प्रथाओं का त्याग करे जो स्त्रियों के सम्मान के विरुद्ध हैं।
- (च) हमारी सामाजिक संस्कृति की गौरवशाली परंपरा का महत्त्व समझे और उसका परिरक्षण करे।
- (छ) प्राकृतिक पर्यावरण की, जिसके अंतर्गत वन, झील, नदी और वन्य जीव हैं, रक्षा करे और उसका संवर्धन करे तथा प्राणि-मात्र के प्रति दयाभाव रखे।
- (ज) वैज्ञानिक दृष्टिकोण, मानववाद और ज्ञानार्जन तथा सुधार की भावना का विकास करे।
- (झ) सार्वजनिक संपत्ति को सुरक्षित रखे और हिंसा से दूर रहे।
- (ञ) व्यक्तिगत और सामूहिक गतिविधियों के सभी क्षेत्रों में उत्कर्ष की ओर बढ़ने का सतत प्रयास करे जिससे राष्ट्र निरंतर बढ़ते हुए प्रयत्न और उपलब्धि की नई ऊँचाइयों को छू ले।
- (ट) यदि माता-पिता या संरक्षक है, छह वर्ष से चौदह वर्ष तक की आयु वाले अपने, यथास्थिति, बालक या प्रतिपाल्य के लिए शिक्षा के अवसर प्रदान करे।

### मौलिक कर्तव्यों का महत्त्व

भारतीय लोकतांत्रिक कल्याणकारी राज्य में मौलिक कर्तव्यों का महत्त्वपूर्ण स्थान है। संविधान में मूल कर्तव्य की स्थापना से अधिकारों और मूल कर्तव्य में संतुलन स्थापित होता है। मौलिक कर्तव्य व्यक्ति में सामाजिक दायित्व की भावना का संचार करते हैं अंततः जिससे राष्ट्रीय भावना में वृद्धि होती है।

### मूल कर्तव्यों को प्रभावी बनाने के उपाय

भारत सरकार ने उच्चतम न्यायालय के भूतपूर्व मुख्य न्यायाधीश श्री जे.एस. वर्मा की अध्यक्षता में मूल कर्तव्यों के प्रचलन पर विचार करने के लिए एक समिति गठित की थी। इस समिति द्वारा 1999 में प्रस्तुत की गई अपनी रिपोर्ट में मूल कर्तव्यों को प्रभावी बनाने के लिए कुछ सुझाव दिए, जिनमें प्रमुख हैं --

- मूल कर्तव्यों को विद्यालयों के पाठ्यक्रम तथा अध्यापकों के प्रशिक्षण पाठ्यक्रम में शामिल किया जाए।

- सभी शासकीय कार्यालयों में तथा सार्वजनिक स्थानों पर बोर्ड विज्ञापन आदि के माध्यम से मूल कर्तव्यों को ज्यादा-से-ज्यादा प्रस्तुत किया जाना चाहिए ताकि लोगों को उनसे परिचित होने का अवसर प्राप्त हो।
- मीडिया को लगातार ऐसे संदेश तथा कार्यक्रम प्रस्तुत करने चाहिए जिनसे मूल कर्तव्यों के संबंध में जागृति तथा चेतना प्रसारित हो।
- मीडिया को ऐसे दृश्य दिखाने से परहेज करना चाहिए जो जनता को उत्तेजित करते हों और उन्हें मूल कर्तव्यों से विचलित करते हों।

### **मौलिक कर्तव्य और उच्चतम न्यायालय**

उच्चतम न्यायालय ने मई, 1998 में भारत सरकार को अधिसूचना जारी की कि राज्य का कर्तव्य है कि मौलिक कर्तव्य के बारे में जनता को शिक्षित करना ताकि अधिकार तथा कर्तव्य के मध्य संतुलन बन सके। इस अधिसूचना के बाद भारत सरकार ने एक समिति का गठन किया जिसके कार्य थे --

1. प्राथमिक, माध्यमिक, उच्च माध्यमिक एवं विश्व विद्यालय के स्तर पर मौलिक कर्तव्य की शिक्षा हेतु विषय वस्तु विकसित करना।
2. पाठ्यक्रम और सह पाठ्यक्रम क्रियाकलापों के भाग के रूप में गतिविधियों का निर्धारण करना।
3. सेवा पूर्ण एवं सेवा काल में विभिन्न स्तरों पर शिक्षकों के प्रशिक्षण हेतु कार्यक्रम विकसित करना।
4. NCERT द्वारा पहले से क्रियान्वित कार्यक्रमों को राष्ट्रीय पाठ्यक्रम की रूपरेखा में शामिल करना तथा अतिरिक्त सुझावों को प्राप्त करना।
5. वयस्क शिक्षा / अनौपचारिक शिक्षा / मीडिया के माध्यम से नागरिकों को प्रशिक्षण हेतु प्रथम विषय-वस्तु का विकास करना।

### **मौलिक अधिकारों पर दिए गए उच्चतम न्यायालय द्वारा निर्णय**

#### **1. श्याम नारायण चौकसे बनाम यूनियन ऑफ इंडिया**

माननीय न्यायाधीश दीपक मिश्रा व माननीय न्यायाधीश रॉय द्वारा अंतरिम आदेश में यह अनिवार्य कर दिया कि --

- 1) हर चलचित्र के पूर्व राष्ट्रगान गाया जाए।
- 2) राष्ट्रगान के समय सभी दर्शकों को स्थिर खड़े रहना अनिवार्य किया जाए।

यह निर्णय भारतीय संविधान के अनुच्छेद 19(1) का उल्लंघन करता पाया गया क्योंकि इससे भारतीय नागरिकों पर अनुचित प्रतिबंध लग रहा था। अनुच्छेद 19(1)जी में यह स्पष्ट रूप से उल्लेखित है कि राज्य कोई भी क़ानून बना सकता है जो अनुच्छेद 19(1) पर प्रतिबंध

लगता है, तथापि यह प्रतिबंध उचित होना चाहिए। इस मामले में, निर्णय नागरिकों के मौलिक अधिकार का उल्लंघन करता पाया गया।

यह मौलिक अधिकारों का उल्लंघन करता पाया गया क्योंकि इसने अनुचित प्रतिबंध लगाए जो कि राज्य द्वारा नहीं किए जा सकते। जैसा कि हमारा देश एक उदार देश है जहाँ हर किसी को स्वतंत्र रूप से सोचने का अधिकार है, बिना किसी दायित्व के अपने विचार व्यक्त करें और बिना किसी विश्वास के उनके विश्वास का पालन करें। इस मामले ने भारतीय समाज में उथल-पुथल मचा दी क्योंकि कई लोगों ने इस फैसले का समर्थन किया क्योंकि उन्होंने इसे हमारे राष्ट्र के सम्मान की रक्षा के लिए पाया था। ऐसे लोग भी थे जो न्यायालय के फैसले से संतुष्ट नहीं थे क्योंकि उन्हें यह नागरिकों के मौलिक अधिकारों का उल्लंघन करने वाला लगा। यह भारतीय न्यायिक प्रणाली में एक ऐतिहासिक मामला था। उनकी इच्छा के बिना राष्ट्रगान के दौरान खड़े होने के लिए किसी को कैसे मजबूर किया जा सकता है? साथ ही, किसी व्यक्ति की देशभक्ति का अंदाजा इससे कैसे लगाया जा सकता है? इधर, इस मामले में, उच्चतम न्यायालय ने स्पष्ट रूप से कहा कि मौलिक कर्तव्य मौलिक अधिकारों से ऊपर हैं। यहाँ उच्चतम न्यायालय के फैसले में कई खामियाँ थीं।

## 2. एम.सी. मेहता बनाम यूनियन ऑफ इंडिया

भारतीय संविधान के अनुच्छेद 51ए(जी) में दिए गए मौलिक कर्तव्य में स्पष्ट रूप से पर्यावरण की रक्षा के लिए नागरिक के कर्तव्य का उल्लेख है। इस लेख के अनुसार, प्राकृतिक पर्यावरण (प्राकृतिक पर्यावरण में वन, नदियाँ, झीलें और वन्य जीवन शामिल हैं) की रक्षा करना और संरक्षित करना प्रत्येक नागरिक का कर्तव्य है। एक स्वस्थ वातावरण किसी भी समाज के कल्याण का एक अनिवार्य तत्व है।

इसके अलावा, उच्चतम न्यायालय ने कहा कि केंद्र सरकार को पाठ्यपुस्तकों में मौलिक कर्तव्यों को उसी उद्देश्य से लिखा जाना चाहिए जिस हेतु उनका निर्माण किया गया है। ऐसे ही शिक्षकों के लिए प्रशिक्षण होना चाहिए जो बच्चों को इस तरह का शैक्षिक शिक्षण प्रदान कर सकें।

## 3. अरुणा रॉय बनाम यूनियन ऑफ इंडिया

अरुणा रॉय बनाम भारत संघ के बहुत प्रसिद्ध मामले में उच्चतम न्यायालय में जनहित याचिका दायर की गई थी। यह तर्क दिया गया था कि स्कूली शिक्षा के लिए राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा (NCFSE) जो NCERT द्वारा प्रकाशित की गई थी, सवैधानिक जनादेश, धर्मनिरपेक्ष विरोधी और केंद्रीय सलाहकार बोर्ड ऑफ एजुकेशन (CABE) के साथ परामर्श के बिना बनाई है और इसलिए इसे रद्द करने की आवश्यकता है। NCFSE के कार्यान्वयन को चुनौती दी गई क्योंकि इसे CABE की स्वीकृति नहीं मिली थी। इसके अलावा, NCFSE को संविधान के खिलाफ पाया गया क्योंकि इसने धर्मनिरपेक्षता के मूल सिद्धांत का उल्लंघन किया।

हालाँकि, याचिका रद्द कर दी गई क्योंकि उच्चतम न्यायालय ने फ्रेम वर्क (NCFSE) को रद्द करने का कोई कारण नहीं पाया। हमारे संविधान में जो दिया गया है वह यह है कि छात्रों को यह सिखाया जाए कि हर धर्म समान है। अनुच्छेद 51ए(ई) इस स्थिति को स्पष्ट रूप से बताता है। इस मौलिक कर्तव्य के अनुसार, एक अलग धर्म के लोगों के बीच सद्भाव और भाईचारे को बढ़ावा देना नागरिक का कर्तव्य है और इन सार्वभौमिक मूल्यों जैसे सत्य, सही आचरण, प्रेम और शांति को प्राप्त करने के लिए शिक्षा का आधार होना चाहिए।

### निष्कर्ष

अंत में, हम यह निष्कर्ष निकाल सकते हैं कि इस लेख में हमने मौलिक कर्तव्यों के प्रत्येक पहलू के बारे में जाना है और इसके प्रत्येक पहलू को पढ़कर हम मौलिक कर्तव्य की आवश्यकता और महत्व को स्पष्ट रूप से समझ सकते हैं। यह हमारे संविधान में जोड़ा गया था क्योंकि हमारी सरकार ने महसूस किया कि एक नागरिक समाज केवल राज्य द्वारा नहीं बनाया जा सकता है, हमारे देश के नागरिकों को हमारे संविधान के मूल उद्देश्य को प्राप्त करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाने की आवश्यकता है। वे हमारे संविधान के अनुच्छेद 51ए में वर्णित राष्ट्र के प्रति अपने कर्तव्यों का पालन करके ऐसा कर सकते हैं।

□

### संदर्भ

1. अनुच्छेद (51ए) भारतीय संविधान
2. AIR 2018 SC 357
3. 1988 SCR (2) 530
4. AIR 2002 SC 3176
5. एस.सी.सी. ऑन लाइन।
6. डी.डी. बसु, भारत का संविधान
3. <https://kjablr.kar.nic.in/sites/kjablr.kar.nic.in/files/05-%20Fundamental%20Duties.pdf>
4. <https://blog.ipleaders.in/national&anthem&shyam&narayan&chouksey&case/>
5. <https://www.hindinotes.org/2017/11/maulik&kartavya&in&hindi.html>

डॉ. फरहत खान

## भारत में लैंगिक असमानता : वैश्विक लैंगिक अंतराल सूचकांक, 2020

भारत जहाँ एक ओर आर्थिक-राजनीतिक प्रगति की ओर अग्रसर है वहीं देश में आज भी लैंगिक असमानता की स्थिति गंभीर बनी हुई है। वैश्विक लैंगिक अंतराल सूचकांक ने वैश्विक स्तर पर भी लैंगिक असमानता को समाप्त करने में सैकड़ों वर्ष लगने की संभावना व्यक्त की है। इन्हीं परिस्थितियों के परिप्रेक्ष्य में अमेरिका की राजनीतिज्ञ हेलिरी क्लिंटन ने कहा कि “महिलाएँ संसार में सबसे अप्रयुक्त भंडार हैं।”

किसी समाज की प्रगति का मानक केवल वहाँ का परिमाणात्मक विकास नहीं होना चाहिए। समाज के विकास में प्रति भाग कर रहे सभी व्यक्तियों के मध्य उस विकास का समावेशन भी होना जरूरी है। इसी परिदृश्य में नवीन विकासवादियों ने विकास की नवीन परिभाषा में वित्तीय, सामाजिक और राजनीतिक समावेशन को आत्मसात किया है।

लैंगिक असमानता की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि

भारतीय समाज में महिलाओं की स्थिति प्राचीन या वैदिक काल में सुदृढ़ थी। उस समय महिलाओं को सभा और समिति जैसी सामाजिक संस्थाओं में समान प्रतिनिधित्व मिलता था। इसके अतिरिक्त, अपाला और लोपा मुद्रा जैसी महिलाओं ने वेदों की रचना में भी योगदान दिया। लेकिन परवर्ती काल में महिलाओं की स्थिति लगातार कमजोर होती गई। प्राचीन काल के पश्चात् मध्य काल में महिलाओं की स्थिति लगातार खराब बनी रही। ऐसी परिस्थितियों में आधुनिक काल के कुछ बुद्धजीवियों द्वारा भारत के स्वतंत्रता संघर्ष के दौरान लैंगिक समानता हेतु किए गए प्रयास अत्यधिक प्रशंसनीय रहे तथा इन प्रयासों से महिला समानता की नवीन अवधारणा का उद्भव हुआ एवं स्वतंत्रता के पश्चात् निर्मित भारतीय संविधान में भी महिलाओं के सशक्तीकरण से संबंधित विभिन्न प्रावधान किए गए।

वैश्विक लैंगिक अंतराल सूचकांक

नवीन विश्व में लैंगिक समानता की स्थिति का सबसे प्रखर और प्रगतिशील प्रकाशन विश्व आर्थिक मंच (World Economic Forum -- WEF) द्वारा वैश्विक लैंगिक अंतराल

सूचकांक के माध्यम से किया जाता है। इस सूचकांक में आधुनिक समानता के विभिन्न मुद्दों जैसे अवसर, शिक्षा की उपलब्धता, स्वास्थ्य की सुरक्षा के साथ ही आर्थिक और राजनीतिक भागीदारी जैसे मानकों का प्रयोग करते हुए 153 (वैश्विक लैंगिक अंतराल सूचकांक, 2020 में 153 देशों को शामिल किया गया) देशों में महिलाओं की स्थितियों से संबंधित आँकड़ों का प्रकाशन किया गया।

### वैश्विक लैंगिक अंतराल सूचकांक के बारे में

- वैश्विक लैंगिक अंतराल सूचकांक विश्व आर्थिक मंच द्वारा जारी किया जाता है।
- लैंगिक अंतराल/असमानता का तात्पर्य “लैंगिक आधार पर महिलाओं के साथ भेदभाव से है। परंपरागत रूप से समाज में महिलाओं को कमजोर वर्ग के रूप में देखा जाता रहा है जिससे वे समाज में शोषण, अपमान और भेदभाव से पीड़ित होती हैं।”
- वैश्विक लैंगिक अंतराल सूचकांक निम्नलिखित चार क्षेत्रों में लैंगिक अंतराल का परीक्षण करता है :-
- आर्थिक भागीदारी और अवसर (Economic Participation and Opportunity)
- शैक्षिक अवसर (Educational Attainment)
- स्वास्थ्य एवं उत्तरजीविता (Health and Survival)
- राजनीतिक सशक्तिकरण और भागीदारी (Political Empowerment)
- यह सूचकांक 0 से 1 के मध्य विस्तारित है।
- इसमें 0 का अर्थ पूर्ण लिंग असमानता तथा 1 का अर्थ पूर्ण लैंगिक समानता है।
- पहली बार लैंगिक अंतराल सूचकांक वर्ष 2006 में जारी किया गया था।

### वैश्विक लैंगिक अंतराल सूचकांक, 2020

वैश्विक लैंगिक अंतराल सूचकांक, 2020 में भारत 91/100 लिंगानुपात के साथ 112वें स्थान पर रहा। उल्लेखनीय है कि वार्षिक रूप से जारी होने वाले इस सूचकांक में भारत पिछले दो वर्षों से 108वें स्थान पर बना हुआ था। इस सूचकांक के विभिन्न मानकों जैसे -- स्वास्थ्य एवं उत्तरजीविता के क्षेत्र में भारत को 150वाँ, आर्थिक भागीदारी और अवसर क्षेत्र में भारत को 144वाँ स्थान, शैक्षिक अवसरों की उपलब्धता के क्षेत्र में भारत को 112वाँ स्थान तथा राजनीतिक सशक्तिकरण और भागीदारी में अन्य बिंदुओं की अपेक्षा बेहतर स्थिति के साथ भारत को 18वाँ स्थान प्राप्त हुआ।

इस सूचकांक में आइसलैंड को सबसे कम लैंगिक भेदभाव करने वाला देश बताया गया। इसके विपरीत यमन (153वाँ), इराक (152वाँ) और पाकिस्तान (151वाँ) का प्रदर्शन सबसे खराब रहा।

WEF के अनुमान के अनुसार, विश्व में फैली व्यापक लैंगिक असमानता को दूर करने में लगभग 99.5 वर्ष लगेंगे, जबकि इसी सूचकांक में पिछले वर्ष के आँकड़ों के आधार पर

यह अवधि 108 वर्ष अनुमानित थी।

ग्लोबल जेंडर गैप इंडेक्स में भारत पिछले साल से चार स्थान पिछड़कर 108 से 112वें नंबर पर पहुँच गया है। विश्व आर्थिक मंच (डब्ल्यूईएफ) की ओर से जारी ताजा सूचकांक में 153 देशों के नाम शामिल हैं। खास बात यह है कि भारत ने इस मामले में बांग्लादेश, नेपाल और श्रीलंका से भी खराब प्रदर्शन किया है जो इस रैंकिंग लिस्ट में क्रमशः 50वें, 101वें और 102वें स्थान पर हैं।

इसमें बड़ी बात यह है कि बांग्लादेश ने लग्जमबर्ग, अमेरिका और सिंगापुर से भी अच्छा प्रदर्शन किया है। दक्षिण एशियाई देशों में सिर्फ मालदीव और पाकिस्तान क्रमशः 123वें और 151वें स्थान पर रहते हुए भारत से पीछे हैं। विभिन्न पैमानों को आधार बनाते हुए यह रिपोर्ट कहती है कि दक्षिण एशिया को लैंगिक समानता का लक्ष्य हासिल करने में 71 वर्ष लगेंगे।

वैश्विक स्तर पर रेग्युलर जॉब्स के मामले में हर तीन पुरुष पर दो महिलाओं का औसत है जबकि भारत में यह आँकड़ा हर तीन पुरुष पर एक महिला का है। भारत में सिर्फ एक ही जॉब है जिसमें पुरुषों के मुकाबले महिलाएँ ज्यादा हैं।

रिपोर्ट कहती है कि पहले इस सूची में भारत की स्थिति इसलिए सुधरी थी क्योंकि तब सरकार का नेतृत्व एक महिला कर रही थी। हालाँकि, सच्चाई यह है कि पिछले 35 वर्षों में राष्ट्रपति के रूप में प्रतिभा पाटिल के अलावा दूसरी कोई महिला न राष्ट्रपति बनी और न ही प्रधानमंत्री। रिपोर्ट कहती है कि 153 देशों के अध्ययन में भारत ऐसा अकेला देश निकला जहाँ राजनीतिक लैंगिक असमानता से बड़ी आर्थिक लैंगिक समानता है। कंपनी बोर्डों में भी यही देखने को मिलता है जहाँ बोर्ड मेंबरस में महज 13.8 प्रतिशत महिलाएँ हैं।

### **भारत में लैंगिक असमानता के कारक**

सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक प्रगति के बावजूद भी वर्तमान भारतीय समाज में पितृसत्तात्मक मानसिकता जटिल रूप में व्याप्त है। इसके कारण, महिलाओं को आज भी एक जिम्मेदारी समझा जाता है। महिलाओं को सामाजिक और पारिवारिक रुढ़ियों के कारण विकास के कम अवसर मिलते हैं, जिससे उनके व्यक्तित्व का पूर्ण विकास नहीं हो पाता है। सबरीमाला और तीन तलाक जैसे मुद्दों पर सामाजिक मतभेद पितृसत्तात्मक मानसिकता को प्रतिबिंबित करता है।

भारत में आज भी व्यावहारिक स्तर (वैधानिक स्तर पर उच्चतम न्यायालय के आदेशानुसार संपत्ति पर महिलाओं का समान अधिकार है) पर पारिवारिक संपत्ति पर महिलाओं का अधिकार प्रचलन में नहीं है इसलिए उनके साथ विभेदकारी व्यवहार किया जाता है।

राजनीतिक स्तर पर पंचायती राज व्यवस्था को छोड़कर उच्च वैधानिक संस्थाओं में महिलाओं के लिए किसी प्रकार के आरक्षण की व्यवस्था नहीं है।

वर्ष 2017-18 के नवीनतम आधिकारिक आवधिक श्रम बल सर्वेक्षण (Periodic Labour



Force Survey) के अनुसार, भारतीय अर्थव्यवस्था में महिलाओं श्रम शक्ति (Labour Force) और कार्य सहभागिता (Work Participation) दर कम है। ऐसी परिस्थितियों में आर्थिक मापदंड पर महिलाओं की आत्मनिर्भरता पुरुषों पर बनी हुई है। देश के लगभग सभी राज्यों में वर्ष 2011-12 की तुलना में वर्ष 2017-18 में महिलाओं की कार्य सहभागिता दर में गिरावट देखी है। इस गिरावट के विपरीत केवल कुछ राज्यों और केंद्र शासित प्रदेशों जैसे मध्य प्रदेश, अरुणाचल प्रदेश, चंडीगढ़ और दमन-दीव में महिलाओं की कार्य सहभागिता दर में सुधार हुआ है।

महिलाओं में रोजगार अंडर-रिपोर्टिंग (Under-Reporting) की जाती है अर्थात् महिलाओं द्वारा परिवार के खेतों और उद्यमों पर कार्य करने को तथा घरों के भीतर किए गए अवैतनिक कार्यों को सकल घरेलू उत्पाद में नहीं जोड़ा जाता है।

शैक्षिक कारक (Educational factor) जैसे मानकों पर महिलाओं की स्थिति पुरुषों की अपेक्षा कमजोर है हालाँकि लड़कियों के शैक्षिक नामांकन में पिछले दो दशकों में वृद्धि हुई है तथा माध्यमिक शिक्षा तक लिंग समानता की स्थिति प्राप्त हो रही है लेकिन अभी भी उच्च शिक्षा तथा व्यावसायिक शिक्षा के क्षेत्र में महिलाओं का शैक्षिक नामांकन पुरुषों की तुलना में काफी कम है।

### **संवैधानिक सुरक्षा उपाय**

लिंग असमानता को दूर करने के लिए भारतीय संविधान ने अनेक सकारात्मक कदम किए हैं; संविधान की प्रस्तावना हर किसी के लिए सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक न्याय प्राप्त करने के लक्ष्यों के साथ ही अपने सभी नागरिकों के लिए स्तर की समानता और अवसर प्रदान करने के बारे में बात करती है। इसी क्रम में महिलाओं को भी वोट डालने का अधिकार प्राप्त है।

संविधान का अनुच्छेद 15 भी लिंग, धर्म, जाति और जन्म स्थान पर अलग होने के आधार पर किए जाने वाले सभी भेदभावों को निषेध करता है। अनुच्छेद 15(3) किसी भी राज्य को बच्चों और महिलाओं के लिए विशेष प्रावधान बनाने के लिए अधिकारित करता है। इसके अलावा, राज्य के नीति निदेशक तत्व भी ऐसे बहुत से प्रावधान करता है जो महिलाओं की सुरक्षा और भेदभाव से रक्षा करने में मदद करता है।

भारत में महिलाओं के लिए बहुत से संवैधानिक सुरक्षात्मक उपाय बनाए हैं; पर ज़मीनी हकीकत इससे बहुत अलग है।

इन सभी प्रावधानों के बावजूद देश में महिलाएँ के साथ आज भी द्वितीय श्रेणी के नागरिक के रूप में व्यवहार किया जाता है, पुरुष उन्हें अपनी कामुक इच्छाओं की पूर्ति करने का माध्यम मानते हैं, महिलाओं के साथ अत्याचार अपने खतरनाक स्तर पर हैं, दहेज प्रथा आज भी प्रचलन में है, कन्या भ्रूण हत्या हमारे घरों में एक आदर्श है।

## भारत में महिला असमानता को समाप्त करने के प्रयास

समाज की मानसिकता में धीरे-धीरे परिवर्तन आ रहा है जिसके परिणामस्वरूप महिलाओं से संबंधित मुद्दों पर गंभीरता से विमर्श किया जा रहा है। तीन तलाक, हाज़ी अली जैसे मुद्दों पर सरकार तथा न्यायालय की सक्रियता के कारण महिलाओं को उनका अधिकार प्रदान किया जा रहा है।

राजनीतिक प्रतिभाग के क्षेत्र में भारत लगातार अच्छा प्रयास कर रहा है इसी के परिणामस्वरूप वैश्विक लैंगिक अंतराल सूचकांक-2020 के राजनीतिक सशक्तिकरण और भागीदारी मानक पर अन्य बिंदुओं की अपेक्षा भारत को 18वाँ स्थान प्राप्त हुआ। मंत्रिमंडल में महिलाओं की भागीदारी पहले से बढ़कर 23 प्रतिशत हो गई है तथा इसमें भारत, विश्व में 69वें स्थान पर है।

भारत ने मैक्सिको कार्य योजना (1975), नैरोबी अग्रदर्शी (Provident) रणनीतियाँ (1985) और लैंगिक समानता तथा विकास और शांति पर संयुक्त राष्ट्र महासभा सत्र द्वारा 21वीं शताब्दी के लिए अंगीकृत “बीजिंग डिक्लरेशन एंड प्लेटफार्म फॉर एक्शन को कार्यान्वित करने के लिए और कार्रवाइयाँ एवं पहले” जैसी लैंगिक समानता की वैश्विक पहलों की अभिपुष्टि की हैं।

‘बेटी बचाओ बेटी पढ़ाओ’, ‘वन स्टॉप सेंटर योजना’, ‘महिला हेल्प लाइन योजना’ और ‘महिला शक्ति केंद्र’ जैसी योजनाओं के माध्यम से महिला सशक्तिकरण का प्रयास किया जा रहा है। इन योजनाओं के क्रियान्वयन के परिणामस्वरूप लिंगानुपात और लड़कियों के शैक्षिक नामांकन में प्रगति देखी जा रही है।

आर्थिक क्षेत्र में आत्म-निर्भरता हेतु मुद्रा और अन्य महिला केंद्रित योजनाएँ चलाई जा रही हैं।

### लैंगिक असमानता कैसे समाप्त कर सकते हैं?

संवैधानिक सूची के साथ-साथ सभी प्रकार के भेदभाव या असमानताएँ चलती रहेंगी लेकिन वास्तविक बदलाव तो तभी संभव है, जब पुरुषों की सोच को बदला जाए। ये सोच जब बदलेगी तब मानवता का एक प्रकार पुरुष महिला के साथ समानता का व्यवहार करना शुरू कर दे न कि उन्हें अपना अधीनस्थ समझे। यहाँ तक कि सिर्फ आदमियों को ही नहीं बल्कि महिलाओं को भी औज की संस्कृति के अनुसार अपनी पुरानी रुढ़िवादी सोच बदलनी होगी और जानना होगा कि वो भी इस शोषणकारी पितृसत्तात्मक व्यवस्था का एक अंग बन गई हैं और पुरुषों को खुद पर हावी होने में सहायता कर रही हैं।

हम केवल उम्मीद कर सकते हैं कि हमारा सहभागी लोकतंत्र, आने वाले समय में और पुरुषों और महिलाओं के सामूहिक प्रयासों से लिंग असमानता की समस्या का समाधान ढूँढ़ने में सक्षम हो जाएगा और हम सभी को सोच व कार्यों की वास्तविकता के साथ में सपने में पोषित आधुनिक समाज की ओर ले जाएगा।

## निष्कर्ष

लैंगिक समानता का सिद्धांत भारतीय संविधान की प्रस्तावना, मौलिक अधिकारों, मौलिक कर्तव्यों और नीति निर्देशक सिद्धांतों में प्रतिपादित है। संविधान महिलाओं को न केवल समानता का दर्जा प्रदान करता है अपितु राज्य को महिलाओं के पक्ष में सकारात्मक भेदभाव के उपाय करने की शक्ति भी प्रदान करता है। प्रकृति द्वारा किसी भी प्रकार का लैंगिक विभेद नहीं किया जाता है। समाज में प्रचलित कुछ तथ्य जैसे -- महिलाएँ पुरुषों की अपेक्षा जैविक रूप से कमजोर होती हैं इत्यादि केवल भ्रूँतियाँ हैं। दरअसल महिलाओं में विशिष्ट जैविक अंतर, विभेद नहीं बल्कि प्रकृति प्रदत्त विशिष्टाएँ हैं, जिनमें समाज का सद्भाव और सृजन निहित हैं।

□

## संदर्भ

1. The Constitution of India, art. 15(1)
2. The Constitution of India, art. 16(1), 16(2)
3. The Constitution of India, art. 14
4. मानव अधिकारों की सार्वभौमिक घोषणा
5. The Hindu Marriage Act, 1955, S 2(a)
6. The Muslim Personal Law (Shariat) Application Act, 1937
7. <https://www.weforum.org/reports/gender-gap-2020-report-100-years-pay-equality>
8. [http://www3.weforum.org/docs/WEF\\_GGGR\\_2020.pdf](http://www3.weforum.org/docs/WEF_GGGR_2020.pdf)

## हिंदी के अच्छे दिन

---

लोक सभा में नए अध्यक्ष का चुनाव किया गया। इस पद के लिए राजस्थान से सांसद चुने गए श्री ओम बिड़ला को लोक सभा का अध्यक्ष बनाया गया। उनके नाम का प्रस्ताव प्रधानमंत्री, कुछ महत्त्वपूर्ण मंत्रियों और कई राजनीतिक दलों के नेता सदस्यों ने किया। प्रस्ताव का अनुमोदन भी कई सांसदों ने किया। प्रधानमंत्री से लेकर सभी ने प्रस्ताव हिंदी में प्रस्तुत किए। प्रधानमंत्री ने ओम बिड़ला का परिचय हिंदी में दिया। प्रोटेम स्पीकर ने अध्यक्ष महोदय के निर्वाचन का प्रस्ताव सभा में हिंदी में प्रस्तुत किया। अध्यक्ष महोदय के चयन की घोषणा हिंदी में की गई। तत्पश्चात्, प्रधानमंत्री श्री ओम बिड़ला को अध्यक्ष आसन तक ले कर आए। उन्होंने अध्यक्ष महोदय का स्थान ग्रहण किया। फिर आरंभ हुआ संसदीय प्रक्रिया के अंतर्गत अध्यक्ष महोदय के स्वागत और अभिनंदन का कार्यक्रम। सर्वप्रथम, प्रधानमंत्री ने अपनी सरकार और दल की ओर से श्री ओम बिड़ला के अध्यक्ष के पद पर चुने जाने के लिए एक वक्तव्य देते हुए उन्हें बधाई दी जो हिंदी में ही दी गई थी। उसके पश्चात्, संसद में प्रत्येक दल के नेता ने उन्हें बधाई देते हुए उनका अभिनंदन किया। लगभग सभी ने यह कार्य हिंदी के माध्यम से किया। केवल केरल, तमिलनाडु, आंध्र प्रदेश और पंजाब के राजनीतिक दलों के नेताओं ने अंग्रेज़ी का प्रयोग किया। तमिलनाडु के डीएमके, अन्ना डीएमके, सीपीएम के नेता अंग्रेज़ी में बोले। केरल के वाम दल का नेता अंग्रेज़ी में बोला। आंध्र का टीडीपी नेता अंग्रेज़ी में बोला परंतु आंध्र में सत्तारूढ़ दल जगन रेड्डी दल के नेता ने हिंदी में भाषण दिया। कर्नाटक और उड़ीसा के दलों के नेता हिंदी में ही बोले। हाँ, पंजाब से अकाली दल के सुखबीर सिंह बादल अंग्रेज़ी में बोले। इस तरह कह सकते हैं कि लोक सभा के 85 प्रतिशत से अधिक राजनीतिक दलों के नेताओं ने हिंदी में अपने उद्गार व्यक्त किए। लोक सभा के नेताओं के मुखारविंद से हिंदी की गूँज खूब सुनाई दी। हिंदी के अच्छे दिन आ गए हैं। अगर अब भी कोई हिंदी नहीं अपनाता, यह उसका अपना नुकसान है। राष्ट्रीय स्तर पर आने और छाने के लिए अब हिंदी का कोई विकल्प नहीं है। जय भारत, जय हिंदी।

माननीय श्री ओम बिड़ला को लोक सभा अध्यक्ष पद पर सर्वसम्मति से चुने जाने पर राष्ट्र की ओर से बधाई।

— सन्तोष खन्ना

डॉ. जयश्री नंदेश्वर

## भारतीय न्यायालयों एवं कारावासों पर अतिभार

भारतीय न्याय व्यवस्था में प्रदान की गई विचारण प्रक्रिया अत्यंत जटिल है। प्रकरण के न्यायिक निराकरण के लिए कई चरणों से होकर गुजरना होता है और प्रत्येक चरण के लिए विहित प्रक्रिया का अनुपालन आवश्यक होता है। समस्त प्रक्रियाओं का अनुपालन करने में अत्यधिक समय व्यतीत हो जाता है। इस दौरान नए प्रकरण सतत रूप से संस्थित होते रहते हैं। समस्त प्रक्रियाओं का पालन कर जितने प्रकरणों का न्यायिक निराकरण होता है उससे अधिक संख्या में नए प्रकरण संस्थित हो जाते हैं। इस प्रकार निराकृत प्रकरणों की अपेक्षा नए संस्थित प्रकरणों की संख्या बहुत अधिक होती है। परिणाम स्वरूप भारतीय न्यायालयों में लंबित प्रकरणों की संख्या लगातार बढ़ती जा रही है। प्रारंभिक विचारण न्यायालयों में, वर्तमान में प्रकरणों की संख्या इतनी अधिक हो गई है कि न्यायालय सभी प्रकरणों के निराकरण हेतु थोड़ा-थोड़ा समय प्रदान कर पाते हैं। इसके कारण बहुत कम प्रकरणों का अंतिम निराकरण हो पाता है और न्यायालयों में लंबित प्रकरणों की संख्या सतत बनी रहती है व बढ़ती जाती है। यही परिदृश्य अपीलीय न्यायालयों का भी है। अतः सभी राज्यों के उच्च न्यायालयों में लंबित प्रकरणों की भरमार है। माननीय उच्चतम न्यायालय में भी लंबित प्रकरणों की स्थिति गंभीर है।

प्रकरणों की अधिकता के कारण न्यायालयों की कार्य करने की गति प्रभावित हो रही है। न्यायालयों को समय पर आपराधिक प्रकरणों के अंतिम निराकरण करने में कठिनाई हो रही है। अभियुक्तों को लंबे समय तक न्याय प्राप्त करने का इंतजार करना पड़ता है। प्रकरणों की यह लंबितता न्याय प्रशासन को बुरी तरह प्रभावित कर रही है। इसी कारण, न्यायविदों में इस बात पर परिचर्चा होती है कि इस लंबितता को कैसे समाप्त किया जाए। विधायिका भी प्रकरणों की अत्याधिक लंबित संख्या एवं न्यायालयों पर बढ़ रहे कार्य बोझ से चिंतित है और लगातार प्रयास कर रही है कि किसी प्रकार से लंबित प्रकरणों की संख्या कम हो जाए। इसके लिए न्याय व्यवस्था में प्रकरणों के शीघ्र निराकरण हेतु वैकल्पिक समाधान प्रणालियों को विधि में स्थान दिया जा रहा है।

आपराधिक प्रकरणों का शीघ्र निराकरण न होने का अन्य दुष्परिणाम यह उत्पन्न हुआ है कि कारावासों में न्यायिक अभिरक्षा में बंद अभियुक्तों की संख्या इतनी अधिक हो गई है कि कारावासों की क्षमता से कई गुना अधिक बंदी निरुद्ध है। विभिन्न आपराधिक प्रकरणों

में, जिनमें न्यायालय अभियुक्त को विचारण के दौरान जमानत का लाभ नहीं देते हैं उन्हें न्यायिक अभिरक्षा में रखने हेतु कारावासों में भेज दिया जाता है। आपराधिक प्रकरणों के अंतिम निराकरण की आशा में कई विचाराधीन बंदी विहित दंड से अधिक समयावधि से बंद हैं। पुराने बंदियों के प्रकरण का अंतिम निराकरण होकर छूटने से पहले नए संस्थित प्रकरणों के अभियुक्तों की संख्या में कारावासों में प्रवेश किए जाते हैं जिससे कि भारतीय कारावास अभिभार से ग्रसित हो गए हैं। कारावासों में बंदियों को रखने के लिए पर्याप्त स्थान व भवन नहीं हैं और यह अधिकता लगातार बढ़ती जा रही है। भारतीय कारावासों में उनकी क्षमता से कहीं अधिक संख्या में कैदी रखे जा रहे हैं जो कि शासन के लिए गंभीर समस्या बन गई है।

देश भर के विभिन्न उच्च न्यायालयों में लगभग 43 लाख, 22 हजार मुकदमें लंबित हैं। मध्य प्रदेश के विभिन्न न्यायालयों में लगभग 11 लाख, 88 हजार प्रकरण लंबित हैं तथा प्रदेश के सभी कारावास बंदियों से भरे पड़े हैं। भारतीय न्यायालयों एवं कारावासों के इस अतिभार का समाधान करने के लिए वैकल्पिक निराकरण के सिद्धांतों को भारतीय विधि में अपनाया जा रहा है। सौदाकारी दलील इस वैकल्पिक निराकरण की व्यवस्था का प्रमुख भाग है। सौदाकारी दलील के माध्यम से प्रकरणों का त्वरित निराकरण संभव हो सकेगा, जिससे कि न्यायालयों में लंबित प्रकरणों की संख्या को बहुत कम किया जा सकता है और विचारण के इंतजार में कारावासों में बंद अभियुक्तों का प्रकरण का अंतिम निराकरण कर छोड़ा जा सकता है। सौदाकारी दलील भारतीय न्यायालयों एवं कारावासों के अतिभार को कम करने के लिए एक प्रभावी विकल्प है।

### **आपराधिक प्रकरणों के निराकरण में विलंब**

भारतीय दंड प्रक्रिया संहिता आपराधिक प्रकरणों के न्यायिक निराकरण हेतु एक विस्तृत प्रक्रिया का प्रावधान करती है। प्रकरणों के अंतिम निराकरण तक कई चरणों से होकर गुजरना पड़ता है, प्रकरण के अंतिम निराकरण तक पहुँचने के लिए न्यायालय को निम्नलिखित प्रक्रियागत चरणों से गुजरना पड़ता है --

- (1) प्रकरण संस्थित होने पर उसकी जाँच।
- (2) अपराध का संज्ञान।
- (3) आरोपों की विरचना।
- (4) अभियोजन साक्ष्य
- (5) अभियुक्त परीक्षण
- (6) बचाव साक्ष्य
- (7) अंतिम तर्क
- (8) निर्णय

उपरोक्त वर्णित चरणों में से प्रत्येक चरण हेतु दंड प्रक्रिया संहिता में विभिन्न प्रावधान किए गए हैं जिनके पालन के अभाव में अगले चरण पर नहीं पहुँचा जा सकता है। विचारण

के प्रत्येक चरण के लिए विहित प्रक्रिया का अनुपालन करने में न्यायालय को अत्याधिक समय लगता है जिसके कारण प्रकरण बहुत लंबे समय तक लंबित रहता है। आपराधिक प्रकरणों के निराकरण में होने वाले इस विलंब से बचने एवं प्रकरण के शीघ्र निराकरण के लिए भारतीय न्याय व्यवस्था में सौदाकारी दलील की संकल्पना को अपनाया गया है।

### **त्वरित निराकरण का सिद्धांत**

भारतीय न्याय प्रक्रिया अत्यंत सुदृढ़ होने के उपरांत भी प्रकरणों के शीघ्र निराकरण में पूर्णतः सफल नहीं हो पा रही है और न्यायालय तथा बंदीगृह अतिभार से ग्रसित हो गए हैं। संपूर्ण न्याय प्रक्रिया का पालन करने में अत्याधिक समय व्यतीत हो जाता है तथा नए प्रकरणों का आगमन सतत जारी रहता है। निराकृत प्रकरणों एवं नवीन संस्थित प्रकरणों की संख्या में अत्यधिक अंतर होने के कारण भारतीय न्यायालय में लंबित प्रकरणों की संख्या चिंताजनक स्वरूप में हो गई है। आपराधिक प्रकरणों के विचारण के दौरान कारावासों में न्यायिक अभिरक्षा में बंद अभियुक्तों की संख्या इतनी अधिक हो गई है कि कारावासों में प्रवेश हेतु भेजे गए नवीन बंदियों के लिए पर्याप्त व्यावस्थाओं का अभाव हो गया है। प्रकरणों के त्वरित निराकरण के लिए ही सौदाकारी अभिवाक की संकल्पना का समावेश न्याय व्यवस्था में किया गया।

आपराधिक प्रकरणों के निराकरण हेतु प्रदान की गई न्याय व्यवस्था की जटिलता के कारण उसके समस्त प्रावधानों का अनुकरण करने में अत्यधिक विलंब कारिता होता है। यह विलंब विधिशास्त्र के उस सिद्धांत का उल्लंघन है जिसके अनुसार न्याय में देरी होना न्याय न प्रदान करने के समान है। समय न्याय का एक महत्वपूर्ण भाग है। समय पर न्याय प्रदान करना ही न्याय की मूल मंशा है। यदि किसी व्यक्ति को समय पर न्याय की प्राप्ति नहीं हो और वह न्याय की आशा में न्याय की ओर देखता रहे तो न्याय के उद्देश्यों की प्राप्ति नहीं की जा सकती। विधिशास्त्र का एक सुस्थापित सिद्धांत है कि “विलंब न्याय को परास्त कर देता है।” इस सिद्धांत का तात्पर्य यह है कि न्याय पाने की इच्छा रखने वाले को समय पर न्याय प्रदान किया जाए। विलंब से प्राप्त न्याय, न्याय नहीं है। भारतीय न्याय व्यवस्था की तकनीकी जटिलताओं के कारण समय पर न्याय प्रदान नहीं हो पा रहा है। इसलिए सौदाकारी दलील की संकल्पना को अपनाकर प्रकरणों का त्वरित निराकरण करने का प्रयास किया जा रहा है।

### **भारत में सौदाकारी दलील की आवश्यकता एवं प्रभाव**

भारतीय न्याय व्यवस्था की तकनीकी जटिलताओं और उससे उत्पन्न होने वाले दुष्परिणामों को दूर करने के लिए सौदाकारी दलील एवं अन्य वैकल्पिक समाधान प्रणालियों को सम्मिलित करना आवश्यक हो गया है। भारतीय न्याय प्रणाली की निम्नलिखित कमियों को दूर करने के लिए सौदाकारी दलील की आवश्यकता है --

- (1) आपराधिक प्रकरणों के निराकरण में विलंब होता है।
- (2) भारतीय न्यायालयों पर सतत् बढ़ता हुआ कार्य अतिभार है।
- (3) भारतीय कारावासों में बंदियों की अत्यधिक संख्या का अतिभार है।
- (4) प्रकरणों के त्वरित निराकरण का अभाव है।
- (5) प्रकरणों के न्यायिक निराकरण में लगने वाले अत्यधिक समय के कारण अभियुक्त का बहुत समय व्यर्थ होता है।
- (6) प्रकरणों के न्यायिक निराकरण में लगने वाले अत्यधिक समय के कारण अभियुक्त को परेशानियों का सामना करना पड़ता है और धन का अपव्यय भी होता है।
- (7) न्यायालयों के अतिभार से ग्रसित होने से न्याय की गुणवत्ता प्रभावित होती है।
- (8) आपराधिक प्रकरणों के साक्षियों को साक्ष्य प्रस्तुत करने हेतु कई समस्याओं का सामना करना पड़ता है जबकि उसका प्रकरण से कोई सरोकार नहीं होता है।
- (9) अभियुक्त कभी-कभी अभियोजन साक्षियों को प्रताड़ित करते हैं।
- (10) साक्ष्यों को न्यायालय में प्रस्तुत करने हेतु अभियोजन को अत्यधिक श्रम करना होता है।
- (11) साक्षियों को न्यायालय में उपस्थिति रखने के लिए पुलिस प्रशासन को अत्यधिक श्रम करना पड़ता है जिसके कारण कानून व्यवस्था बनाए रखने के लिए पर्याप्त बल उपलब्ध नहीं हो पाता है।
- (12) न्यायालय प्रकरणों की अधिकता के कारण नवीन संस्थित प्रकरणों को समय पर निराकृत नहीं कर पाते हैं।
- (13) प्रकरणों की अधिकता के कारण शासन को अत्यधिक संख्या में नए न्यायालयों की स्थापना करनी पड़ रही है जिससे शासन का आर्थिक भार बढ़ रहा है।

भारतीय न्याय व्यवस्था की उपरोक्त कमियों को समाप्त करने के लिए सौदाकारी दलील एक उपयोगी साधन है जिसकी सहायता से अभियुक्त को त्वरित न्याय प्राप्त होगा। अभियुक्त लंबी विराचरणा प्रक्रिया से बच जाता है तथा अभियोजन उस पर होने, सबूत के भार और प्रकरण को साबित करने के दायित्व से बच जाता है। साक्षियों को सौदाकारी दलील में बुलाने की आवश्यकता नहीं होती है इसलिए ये प्रकरण में निरर्थक ही परेशान होने से बच जाते हैं। इस प्रकार सौदाकारी दलील के उपयोग से न्यायालय, अभियुक्त, अभियोजन, साक्षी, पुलिस प्रशासन, न्यायालय के कर्मचारियों का समय, धन एवं श्रम के अपव्यय को बचाया जा सकता है जिसका उपयोग अन्य उत्पादक कार्यों में किया जा सकता है। सौदाकारी अभिवाक् की संकल्पना इस संदर्भ में बहुत उपयोगी है। इसकी सहायता से न्याय के उद्देश्यों की पूर्ति त्वरित रूप से किए जाने में अहम् योगदान प्राप्त होता है।

□



डॉ. जयप्रकाश आर्य

## भारत में गरीबी उन्मूलन : सामाजिक-क़ानूनी पहलू

गरीबी एक सापेक्ष शब्द है। किसी देश के कल्याण मानक और उसकी अर्थव्यवस्था की स्थिति के आधार पर गरीबी रेखा एक देश से दूसरे देश में भिन्न होती है। विकसित देशों में लोगों के लिए न्यूनतम जीवन स्तर, उच्च उपभोग आवश्यकताओं और बहुत अधिक वस्तुओं और सेवाओं तक पहुँच शामिल है। उनके जीवन स्तर ऊँचे हैं। समाजशास्त्री इस घटना का वर्णन मुख्य रूप से गरीबी की संस्कृति के कारण करते हैं। वित्तीय संसाधनों की कमी या भौतिक सुख-सुविधाओं की कमी के कारण गरीब गरीब नहीं हैं, लेकिन मुख्य रूप से वे गरीब हैं क्योंकि वे कम सामाजिक-आर्थिक स्थिति वाले परिवार में पैदा होते हैं। गरीब लोगों के पास न्यूनतम आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए पर्याप्त धन नहीं है और वे लगातार अपने परिवारों के लिए भोजन, कपड़े, आश्रय, शिक्षा और स्वास्थ्य सुविधाओं की उम्मीद पूरी नहीं करते हैं।

गरीबी राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय दोनों क्षेत्रों में उत्पत्ति के साथ एक बहुआयामी गंभीर समस्या है, फिर भी विशेष रूप से भारत में यह क्षेत्र, धर्म, जाति, संस्कृति के साथ दृढ़ता से जुड़ा हुआ है और ग्रामीण क्षेत्रों में रहने वाली अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों में सबसे अधिक गरीब होते हैं। इसके अलावा, भारत में उत्तर-पूर्व, केंद्र-पूर्व और उत्तरी शुष्क क्षेत्रों में गरीबी की तीव्र समस्या बड़े पैमाने पर पाई जाती है। भारत सरकार गरीबी उन्मूलन के लिए लगातार प्रयास कर रही है और देश ने कुछ सकारात्मक परिणाम प्राप्त किए हैं। लेकिन फिर भी हमारे पास भारत से गरीबी दूर करने का एक लंबा रास्ता है।

विश्व बैंक के अनुसार, “भारत में गरीबी के कई आयाम हैं। इसमें कम आय और गरिमा के साथ जीवित रहने के लिए आवश्यक बुनियादी वस्तुओं और सेवाओं का न मिलना शामिल है। लोग स्वास्थ्य और शिक्षा, स्वच्छ जल और स्वच्छता संबंधी सुविधाओं से वंचित होते हैं।”

ओक्सफ़ाम की वर्ष 2019 की रिपोर्ट के अनुसार भारत के एक प्रतिशत सबसे अधिक अमीर लोगों के पास देश के 95-96 करोड़ लोगों की तुलना में चार गुणा से अधिक धन संपदा है। 95-96 करोड़ लोग देश की 70 प्रतिशत जनसंख्या हैं। कहने का अभिप्राय यह है कि देश की 30 प्रतिशत जनसंख्या के पास जितनी धन-संपदा है वह 70 प्रतिशत जनसंख्या की धन-संपदा से चार गुणा से भी अधिक है। इसका एक अर्थ यह भी है कि देश में अमीर लोग और अमीर होते जा रहे हैं और गरीबों की स्थिति में कोई विशेष अंतर नहीं आया है।

श्रीमती इंदिरा गांधी ने एक राजनेता के रूप में अंतर्राष्ट्रीय ख्याति प्राप्त की और इसमें

कोई संदेह नहीं है कि वह राजनीति में असाधारण रूप से कुशल थीं। उनके नारे, विशेष रूप से -- 'गरीबी हटाओ' का नारा उनके चुनाव अभियानों के लिए सबसे लोकप्रिय नारा बन गया था। वह आश्वस्त थी कि केवल राज्य के उद्योग, कृषि और सेवाओं को राज्य द्वारा बारीकी से निर्देशित किया गया था; तब नागरिकों को निश्चित रूप से इक्विटी और न्याय का आश्वासन मिला। वह भारत पर साम्राज्यवादी दबावों से सावधान थी -- राजनीतिक, शैक्षणिक और आर्थिक उसने कभी भी अपने विश्वास को नहीं छोड़ा कि विदेशी हाथ हमेशा न केवल स्थिरता और स्वतंत्रता बल्कि राजनीतिक शक्ति को भी कमजोर करना चाहते हैं। इंदिरा जी ने एक आंदोलन का भी नेतृत्व किया जिसे 'हरित क्रांति' के रूप में जाना जाता है। मुख्य रूप से पंजाब क्षेत्र के अत्यंत गरीब सिख किसानों को प्रभावित करने वाले खाद्य अभावों को पूरा करने के लिए इंदिरा गांधी ने फसल विविधीकरण और खाद्य निर्यात को बढ़ावा दिया, जिससे देशवासियों के लिए नए रोजगार पैदा हुए और ज़रूरतमंदों के लिए भोजन। उसने कृषि कार्यक्रमों में बहुत बदलाव किए, जिससे देश के गरीबों की स्थिति में बहुत सुधार हुआ। यह देश की अर्थव्यवस्था में उनके द्वारा निभाई गई एक महान स्टर्लिंग भूमिका थी। इंदिराजी ने जिस नीली क्रांति की शुरुआत की थी, वह पशुपालन के क्षेत्र में एक और पहचान थी। भारतीय जनता की गरीबी को समाप्त करने के लिए इंदिरा जी ने 20-सूत्रीय कार्यक्रम की शुरुआत की, जबकि गरीबी उन्मूलन की उनकी प्रतिबद्धता सार्वभौमिक थी।

1967 में जब इंदिराजी प्रधानमंत्री थीं, उन्होंने भारत के रणनीतिक परमाणु ऊर्जा कार्यक्रम का समर्थन किया। भारत हमेशा शांतिपूर्ण उद्देश्यों के लिए परमाणु ऊर्जा के उपयोग के लिए प्रतिबद्ध रहा है, लेकिन कई अवसरों पर देश ने स्पष्ट कर दिया है कि इसे परमाणु खतरे से कम नहीं किया जाएगा। 1974 में श्रीमती गांधी ने परमाणु परीक्षण किया, जो थार रेगिस्तान के पास पोखरण में किया गया और इस प्रकार भारत को अंतर्राष्ट्रीय वैज्ञानिक मानचित्र पर लाया गया। उन्होंने अपने पाकिस्तानी समकक्ष को यह आश्वासन देने के लिए लिखा कि भारत परमाणु ऊर्जा का उपयोग केवल शांतिपूर्ण उद्देश्यों के लिए करेगा। इसने भारत की परमाणु क्षमता और महाशक्तियों के परमाणु नियमों का पालन करने की अनिच्छा को इंगित किया। श्रीमती इंदिरा गांधी को तीसरी दुनिया के पुनरुत्थान के चैंपियन के रूप में देखा जाता है। वह भारत की आम जनता के हितों की पक्षधर थीं और उन्होंने भारतीय लोगों के कल्याण और भारत की एकता और अखंडता के लिए अपना जीवन लगा दिया।

गरीबी का अर्थ गरीबों के पास अपर्याप्त संसाधनों का होना है। भारत के उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीश और विधि आयोग के अध्यक्ष रहे डॉ. ए.आर. लक्ष्मणन ने गरीबी को बहुपक्षीय मानव अधिकारों का उल्लंघन माना है। उन्होंने अपनी पुस्तक 'च्वायस ऑफ़ जस्टिस' में कहा है कि गरीब लोग अपने परिवारों के भरण-पोषण करने के लिए सक्षम नहीं हो पाते हैं। न उन्हें अपने श्रम के लिए पर्याप्त मज़दूरी मिल पाती है और न ही वे परिवारों के लिए सिर पर छत की व्यवस्था कर पाते हैं। उन्हें न स्वास्थ्य संबंधी सुविधाएँ मिलती हैं और न ही सुरक्षित वातावरण

मिलता है। उन्हें न शुद्ध पेय जल मिल पाता है और न ही उनके बच्चों को शिक्षा सुविधाएँ मिल पाती हैं। कहने का अभिप्राय यह है कि उनका जीवन स्तर बहुत ही निम्न होता है।

भारत में आर्थिक संतुलित विकास के लक्ष्य के लिए भारत के संविधान के अनुच्छेद चार में दिए गए नीति निर्देशक तत्वों में अनुच्छेद 39 में प्रदत्त एक महत्वपूर्ण नीति निर्देशक तत्व है -- आर्थिक न्याय। अनुच्छेद 39 में कहा गया है कि राज्य अपनी नीति का इस प्रकार संचालन करेगा कि देश के भौतिक संसधनों का नियंत्रण इस प्रकार बंटा हो जिससे वह कुछ ही हाथ में केंद्रित होकर न रह जाए। पिछले 70 वर्षों में इस उद्देश्य को प्राप्त नहीं किया जा सका है।

कल्याणकारी राज्य की अवधारणा

गरीबी का निर्मूलन करने के लिए श्रीमती इंदिरा गांधी के योगदान को भुलाया नहीं जा सकता। गरीबी उन्मूलन के लिए उन्होंने हमारे उप-महाद्वीप में आर्थिक लोकतंत्र की शुरुआत की।

भारत के संविधान में राज्य के नीति निर्देशक सिद्धांतों के अनुसार आर्थिक न्याय का उद्देश्य आर्थिक लोकतंत्र और 'कल्याणकारी राज्य' की स्थापना करना है। आर्थिक न्याय का आदर्श अवसर की समानता है और अवसर की असमानता को दूर कर जीवन को सार्थक और जीवन जीने के लायक बनाना है। भारत के पहले प्रधान मंत्री पंडित नेहरू जी के अनुसार भारत की विरासत के चार प्रमुख स्तंभ हैं -- लोकतांत्रिक संस्था-निर्माण, अखिल भारतीय धर्मनिरपेक्षता को मान्यता, देश में समाजवादी अर्थशास्त्र और गुटनिरपेक्षता की विदेश नीति, ये सभी भारतीयता की दृष्टि से अभिन्न रूप से जुड़े रहे हैं। भारत की पूरी जनता और नेताओं को देश के सम्मान और उसकी खूबसूरत संस्कृतियों की विविधता में एकता की रक्षा के लिए और इन मजबूत स्तंभों पर हमले का मुकाबला करने के लिए आगे आना चाहिए। इस प्रकार, हमारा राष्ट्र सामाजिक-आर्थिक, सांस्कृतिक और राजनीतिक प्रगति में वांछित सफलता प्राप्त कर सकता है और गरीबी को मिटाने और समाज के कमज़ोर वर्गों के जीवन से आवश्यक वस्तुओं की कमी को दूर करने में सक्षम हो जाएगा।

वैसे भी एनडीए सरकार ने 2032 तक गरीबी दूर करने का लक्ष्य रखा है। प्रधान मंत्री नरेंद्र मोदी ने अप्रैल, 2016 में एक महत्वाकांक्षी कार्य योजना बनाई थी जिसके अंतर्गत 2032 तक प्रति वर्ष 10 प्रतिशत की वृद्धि करना है। कार्य योजना के अनुसार, अगले 16 वर्षों में भारत से गरीबी पूरी तरह से खत्म हो जाएगी और इसका लक्ष्य 175 मिलियन नई नौकरियों का सृजन करना था। इस योजना में निम्नलिखित विषयों में सुधारों की परिकल्पना की गई है -- समावेश और इक्विटी के साथ त्वरित विकास, रोजगार सृजन की रणनीति, स्वास्थ्य और शिक्षा तक सार्वभौमिक पहुँच, सुशासन, कृषि और संबद्ध क्षेत्रों में किसान-केंद्रित कार्यक्रम, स्वच्छ भारत और गंगा काया-कल्प, ऊर्जा संरक्षण और दक्षता।

वर्ष 2019-20 में केंद्र सरकार ने पीएम किसान योजना की घोषणा की थी, जिसके तहत

प्रति वर्ष 6,000 रुपए तीन किस्तों में दो हेक्टेयर तक खेती योग्य भूमि रखने वाले 120 मिलियन छोटे और सीमांत किसानों को दिए जाएँगे। प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी ने 24 फरवरी, 2019 को उत्तर प्रदेश के गोरखपुर में 75,000 करोड़ रुपये की प्रधान मंत्री किसान सम्मान निधि (पीएम-किसान) योजना शुरू की, जिसमें 10 मिलियन से अधिक किसानों को 2,000 रुपये की पहली किस्त हस्तांतरित की गई। यह गरीब और हाशिए के किसानों की मदद करने के लिए एक मेगा योजना साबित होगी। इस प्रकार, केंद्र सरकार समय-समय पर गरीबों के हित के लिए कई योजनाएँ प्रारंभ करती रहती हैं।

भारत में गरीबी के मुख्य कारक हैं -- 1. देश में बेतहाशा बढ़ती जनसंख्या। 2. जनसंख्या वृद्धि के कारण सब को समुचित स्वास्थ्य, शिक्षा, पेयजल, स्वच्छता संबंधी सुविधाएँ नहीं मिल पाती। 3. संसाधनों का असमान वितरण। 4. समावेशी आर्थिक विकास का अभाव। 5. असमान क्षेत्रीय विकास। 6. प्राकृतिक आपदाओं का प्रभाव।

भारत के तत्कालीन वित्त मंत्री श्री अरुण जेटली ने 15 अप्रैल, 2019 में कहा था कि देश में तीव्र गति से आर्थिक विकास और शहरीकरण हो रहा है जिसके कारण देश में गरीबों की संख्या कम हो रही है और वर्ष 2021 तक घोर गरीबी में रहने वाले लोगों की संख्या कम हो जाएगी और एक दशक के बाद देश से घोर गरीबी समाप्त हो जाएगी।

अनेक वर्षों से सरकारें गरीबी उन्मूलन के लिए सक्रिय हैं परंतु वर्ष 2020 के आते-आते कोरोना वायरस के कारण स्थितियों में बिल्कुल परिवर्तन आ गया है।

कोरोना वायरस से महामारी के कारण देश में लगभग तीन महीने तक वित्तीय और आर्थिक गतिविधियों पर विराम लगाना पड़ा जिसका एक प्रभाव यह हुआ कि करोड़ों कामगारों को लंबे अरसे तक बिना रोजगार के रहना पड़ा और अंततः उन्हें अपने गाँवों के लिए पलायन करना पड़ा जो इस वर्ष की अब तक की सबसे बड़ी त्रासदी सिद्ध हुई। इस समय समूचे देश में कोरोना महामारी का प्रकोप बहुत बढ़ गया है जिसके कारण अभी भी काम-धंधों में सामान्य स्थिति नहीं बन पा रही है। स्पष्ट है इस संकटपूर्ण स्थिति से गरीबी उन्मूलन योजनाओं का वांछित प्रभाव नहीं हो पाएगा। सरकारें गरीबों के लिए बड़े पैमाने पर नक़द सहायता और मुफ्त राशन व्यवस्था कर रही है; परंतु फिर भी गरीब लोग बिना प्रभावित नहीं रहेंगे। अब गरीबी उन्मूलन के लिए इस वर्ष के संकटों को ध्यान में रखकर नए सिरे से विचार करना होगा।

□

## श्रीमती नीतिनिपुणा सक्सेना

### प्रतिलिप्यधिकार अधिनियम पर इंटरनेट पायरेसी के प्रभाव और कोविड-19

कॉपीराइट अधिनियम (प्रतिलिप्यधिकार अधिनियम) कॉपीराइट स्वामी के अधिकारों को संरक्षण का कार्य करता है तथा इसके द्वारा सृजन कर्ता के अधिकारों को संरक्षण दिया गया है। कॉपीराइट का उद्देश्य स्वामी के अधिकारों को संरक्षण प्रदान करना है।

प्रस्तुत आलेख से इस बात पर प्रकाश डालने का प्रयास किया गया है कि कोविड-19 के बाद इंटरनेट पायरेसी से कॉपीराइट अधिनियम का उल्लंघन अतिशय मात्र में होने लगा है लोग अपने फुर्सत के क्षणों में नेट के माध्यम से या अन्य इलेक्ट्रॉनिक माध्यम से अधिनियम का जाने अनजाने रूप से उल्लंघन कर रहे हैं। इससे कॉपीराइट स्वामी के अधिकारों पर प्रतिकूल प्रभाव स्पष्ट रूप से दिखाई दे रहा है।

**मूल शब्द :** कॉपीराइट अधिनियम, कॉपीराइट संरक्षण, स्वामी सृजनकर्ता, उल्लंघन इंटरनेट पायरेसी।

**प्रस्तावना :** मस्तिष्क के उत्पाद बौद्धिक संपदा के रूप में जाने जाते हैं यह कई तरह के होते हैं एवं विभिन्न विधियों द्वारा इन अधिकारों को उपचारित किया जाता है जिसमें से एक विधि प्रतिलिप्यधिकार अधिनियम है। सामान्य रूप से कॉपीराइट स्वामी को अपनी कृति पर अनन्य अधिकार प्राप्त होता है। वह अपनी कृति को पुनरुत्पादित, विक्रय, भाषांतरण, रूपांतरण, अनुकूलन आदि कर सकता है या लाइसेंस या समनुदेशन द्वारा यह अधिकार किसी अन्य को प्रदान कर सकता है। वह अपनी कृति की वसीयत भी कर सकता है। कॉपीराइट स्वामी के लाइसेंस या समनुदेशन के बिना यदि कोई उसकी कृति को पुनरुत्पादित, विक्रय या भाड़े पर देता है, संचालित, भाषांतर, अनुकूलन करता है -- कॉपीराइट का उल्लंघन करता है।

डिजिटल युग में सृजनात्मकता को प्रोत्साहन देने के लिए प्रयास किया जा रहा है किंतु मानव प्रकृति आसान तरीकों की ओर बढ़ने की होती है। विभिन्न डिजिटल प्लेटफॉर्म विभिन्न कृतियों या सृजनात्मकता की उपलब्धता ने डिजिटल माध्यमों की ओर खींचने का काम किया है। इस प्रकार कॉपीराइट विषय वस्तुओं की ओर व्यक्तियों का झुकाव अधिक होने लगा है।

कोविड-19 के काल में सोशल डिस्टेंसिंग अर्थात् सामाजिक दूरी को दूर करने के लिए व्यक्तियों का रुझान रचनात्मक गतिविधियों की ओर बढ़ा है। इससे सृजनात्मकता एवं मौलिकता की अभिव्यक्ति प्रभावित हुई है। साथ ही इसका प्रतिकूल प्रभाव कॉपीराइट अधिनियम के अंतर्गत

कॉपीराइट स्वामी के आर्थिक हितों पर देखा जा सकता है।

कोविड-19 काल के दौरान कॉपीराइट उल्लंघन के इंटरनेट पायरेसी के मामले बढ़े हैं।

**प्रविधि :** शोध प्रविधि के अंतर्गत परंपरागत पद्धति को लिया गया है। साथ ही व्यवहारिक शोध प्रविधि को भी अपनाया गया है। इसके अंतर्गत अधिनियम पुस्तकों का अध्ययन तथा समाचार-पत्रों से समाचार साधनों द्वारा जानकारी एकत्रित की गई है। व्यावहारिक शोध के रूप में फोन और मोबाइल से गूगल फोन के द्वारा तथा साक्षात्कार के द्वारा ऑकड़ों को एकत्रित किया गया है।

**कॉपीराइट क्या है?**

कॉपीराइट शब्द कॉपीयर से बना है जिसका अर्थ होता है प्रतिलिपि, वैदिक युग, पूरा वैदिक युग, उत्तर वैदिक युग, कॉपीराइट जैसी कोई अवधारणा स्पष्ट नहीं थी क्योंकि मानव प्रकृति एवं प्रवृत्ति 'सर्वजन हिताय सर्वजन सुखाय' की थी किंतु समय के साथ 15वीं शताब्दी में प्रिंटिंग मशीन के अविष्कार ने पांडुलिपि को मुद्रण के रूप में तैयार किए जाने की व्यवस्था की।

ब्लैक लॉ डिक्शनरी में कॉपीराइट साहित्यिक संपदा में एक अधिकार है जिससे निश्चित विधि द्वारा मान्यता एवं स्वीकृति प्रदान की गई जिसके अनुसार किसी साहित्य या कलात्मक उत्पाद के रचयिता या निर्माता को अमूर्त एवं अभौतिक अधिकार प्राप्त होता है जिससे वह कृति के बारे में एक विशिष्ट अवधि तक उसके मुद्रण एवं विक्रय का अनन्य अधिकार रखता है।

इस विधि का प्रमुख उद्देश्य सृजनकर्ता को प्रोत्साहित करना, उनके अधिकारों की रक्षा करना, उनके आर्थिक हितों को संरक्षण देना एवं रचयिता एवं लेखक की कृति के अनाधिकृत पुनरुत्पादन या उपयोग को रोकना है।

कॉपीराइट का संरक्षण साहित्यिक कृतियों, नाटक कृतियाँ, संगीतात्मक कृतियों के साथ-साथ फिल्म एवं साउंड रिकॉर्डिंग को भी प्राप्त है।

कॉपीराइट अधिनियम भारत में 1957 में प्रचलन में आया। भारत बर्न अभिसमय एवं सार्वभौमिक अभिसमय का सदस्य है इसलिए भारत की कॉपीराइट विधि को अभिसमय के अनुकूल बनाने के लिए अभी तक 6 बार संशोधन किए जा चुके हैं।

कॉपीराइट स्वामी की अनुमति के बिना या लाइसेंस के बिना या समनुदेशन के बिना कॉपीराइट स्वामी के अनन्य अधिकारों का प्रयोग एवं सार्वजनिक रूप से सूचित किए जाने बिना कॉपीराइट अधिनियम का उल्लंघन होता है। अतिलंघन से बनाई गई प्रतियों का विक्रय करना, भाड़े पर देना, उसके संबंध में व्यापार करना या व्यापार का वितरण इस तरह से करना कि वह स्वामी के अधिकारों पर प्रतिकूल प्रभाव डाले या उन कृतियों को सार्वजनिक रूप से प्रदर्शित करना उल्लंघन माना जाएगा। अतिलंघनकारी प्रतियों जो साहित्यिक, नाट्य, संगीत या कलात्मक कृति हो सकेंगी, इनका पुनरुत्पादन किया जाना, जिसमें कृति को फिल्म या चलचित्र के रूप में करना नहीं है। कॉपीराइट तीन तरह के उपचार प्रदान करता है सिविल उपचार, दांडिक उपचार एवं प्रशासनिक उपचार।

## इंटरनेट पायरेसी

कोविड-19 काल के दौरान लॉक डाउन पीरियड में लोग अपने घरों में रहे हैं और वे अपने कंप्यूटर, लैपटॉप, इंटरनेट आदि का बहुतायत में प्रयोग कर रहे हैं। कॉपीराइट एक विधिक अधिकार है। इंटरनेट पायरेसी कंप्यूटर प्रोग्राम से संबंधित है। कंप्यूटर सॉफ्टवेयर को कॉपीराइट अधिनियम के अंतर्गत इंटेलेक्चुअल प्रॉपर्टी राइट संरक्षण प्राप्त है। यह वास्तविक चोरी से भिन्न है जो अधिकृत सॉफ्टवेयर की अवैध प्रतियाँ बनाने एवं उनका वितरण करने के लिए इंटरनेट के उपयोग से संबंधित है। तकनीकी विकास विशेषकर वेब ने इंटरनेट पायरेसी में वृद्धि की है।

वेबसाइट बनाना सरल एवं वैध कार्य है जिसके द्वारा अवैध और अनाधिकृत सॉफ्टवेयर का पुनरुत्पादन, विज्ञापन और वितरण आदि किया जाता है। यह अधिकृत सॉफ्टवेयर के अवैध इलेक्ट्रॉनिक्स अंतरण द्वारा घटित होता है। इसमें कॉपीराइट कृति को डिजिटल फॉर्मेट में अंतरित कर दिया जाता है और कंप्यूटर फाइल से अवैध प्रतियाँ तैयार की जाती हैं। कॉपीराइट से पायरेसी होती है। सामान्य रूप से इंटरनेट का प्रयोग अपराधियों द्वारा जाली सॉफ्टवेयर बनाने, उनके उपयोग, विज्ञापन, विक्रय, अर्जन एवं वितरण कार्यों के लिए किया जाता है। यह अपराध सरलता से दूर स्थान पर बैठ कर किया जा सकता है।

इंटरनेट या फाइल साझा करने की तकनीक नए सॉफ्टवेयर, उद्योग, मनोरंजन सभी से जघन्य अपराध पैदा कर दिए हैं। डिजिटल फॉर्मेट में रखे साहित्यिक, कलात्मक कार्य ऑडियो ऑडियो विजुअल आदि के स्टोरेज आइडेंटिटी वितरण को बहुत सरल बनाया है। एक बार वेबसाइट पर लोड होने के बाद इसकी गुणवत्ता में बार बार प्रयोग के बाद भी कोई कमी नहीं आती।

किंतु यह कॉपीराइट स्वामी के नैतिक एवं आर्थिक हितों के लिए हानिप्रद है। कंप्यूटर इंटरनेट ने जानकारी के प्रसारण को बहुत आसान कर दिया है। कॉपीराइट स्वामी प्रसारण की क्षमता को नियंत्रित कर सकते हैं। कॉपीराइट अधिनियम प्रभावी बनाने की आवश्यकता है। साथ ही आईटी एक्ट एवं कॉपीराइट एक्ट में समन्वय की आवश्यकता है। कॉपीराइट अधिनियम के अंतर्गत सिविल उपचार का प्रावधान किया गया है।

कंप्यूटर प्रोग्राम को अगर जान-बूझकर कॉपीराइट के उल्लंघन में प्रयोग किया जा रहा है। तो 7 दिन से 3 वर्ष तक के कारावास तथा 50,000 से दो लाख रुपए तक के जुर्माने का प्रावधान है। इंटरनेट पायरेसी बहुत जटिल एवं भयंकर रूप में भारत के सामने आ रही है। पायरेसी के गंभीर परिणामों के हिसाब से उक्त दंड पर्याप्त एवं प्रभावी नहीं लगता। कारावास की अवधि को बढ़ाने एवं जुर्माने अधिक करने की दिशा में कार्य किया जाना चाहिए। इंटरनेट पायरेसी से निपटने के लिए विशेष अधिकारी की नियुक्ति एवं त्वरित निपटारे की व्यवस्था का प्रावधान किया जाना चाहिए।

सामान्य रूप से फिल्म चलचित्र के निर्माता के कॉपीराइट के उल्लंघन को वीडियो पायरेसी के रूप में देखा जाता है। कॉपीराइट स्वामी की अनुमति के बिना या लाइसेंस के बिना फिल्म निर्माता की फिल्म की प्रतियाँ तैयार करना, विक्रय करना, किराए पर देना, विक्रय करना या

किराए पर देने की प्रस्तावना करना या सार्वजनिक रूप से संसूचित किया जाना उल्लंघन की श्रेणी में आता है। चलचित्र या फिल्म में वीडियो फिल्म आदि को शामिल किया गया है। फिल्में वीडियो कैसेट में भी जारी की जाती है। वीडियो पायरेसी फिल्म निर्माता की अनुमति के बिना फिल्म का वीडियो के रूप में अनाधिकृत पुनः उत्पादन विक्रय केवल नेटवर्क द्वारा प्रसारण शामिल है।

बहुतायत में व्यक्ति थिएटर से ज्यादा घरों पर ही फिल्म देखना पसंद करते हैं। वीडियो अधिकार फिल्म निर्माता द्वारा बेच दिया जाता है जो बाजार में बेचने एवं किराए से देने के लिए फिल्म या वीडियो कैसेट तैयार करता है। इन कैसेट का वीडियो पार्लर में या केवल नेटवर्क पर व्यावसायिक उपयोग इस फिल्म के कॉपीराइट का उल्लंघन है। केवल नेटवर्क पर फिल्में कॉपीराइट स्वामी की अनुमति के बिना प्रसारित नहीं की जा सकती। यदि ऐसा किया जाता है तो यह केवल पायरेसी होती है। उपग्रह चैनल द्वारा पायरेसी आज एक दुर्लभ घटना है। वीडियो पायरेसी दो प्रकार से हो सकती है।

1. फिल्म निर्माता ने वीडियो अधिकार नहीं बेचा है लेकिन बाजार में वीडियो कैसेट उपलब्ध हैं।
2. फिल्म निर्माता ने वीडियो अधिकार एक व्यक्ति को बेचा है किंतु वीडियो कैसेट अनाधिकृत चोरी के रूप में बनाए जा रहे हैं।

धारा 52 में वीडियो फिल्म प्रदर्शन की वैधानिक शर्तें बताई गई है जिसके अनुसार, यदि फिल्म चलचित्र अधिनियम, 1952 के अंतर्गत प्रमाणिकृत होना अपेक्षित है तो फिल्म प्रमाणीकरण बोर्ड द्वारा प्रमाण-पत्र होना चाहिए। वीडियो फिल्म बनाने वाले का नाम, पता एवं एक घोषणा-पत्र जिसमें कृति के स्वामी द्वारा लाइसेंस या सहमति ली गई हो। कॉपीराइट स्वामी का नाम एवं पता भी उस पर अंकित होना चाहिए।

भारत में वीडियो पायरेसी एक गंभीर समस्या है फिल्म की अनाधिकृत प्रतियाँ सी.डी., डी.वी.डी. छोटे गाँव से लेकर महानगरों तक आसानी से उपलब्ध है। इसमें फिल्म निर्माता से लेकर थिएटर मालिक तक सभी को भारी आर्थिक नुकसान होता है। सरकार को मनोरंजन कर, उत्पाद कर, उत्पाद शुल्क बिक्री कर में राजस्व की हानि होती है। बहुतायत में होने वाले इस उल्लंघन को देखते हुए आपराधिक कारावास एवं जुर्माने में भारी वृद्धि की आवश्यकता है।

जिला स्तर पर वीडियो पुस्तकालय की सूची तैयार कर लाइसेंस दिया जाए।

त्वरित निपटारे हेतु जिलों में विशेष अदालतों का गठन किया जाए।

### चुनौतियाँ

इंटरनेट पायरेसी में कॉपीराइट अधिनियम को जिन चुनौतियों का सामना करता है --

1. कॉपीराइट स्वामी के अधिकारों का अतिशय उल्लंघन।
2. कंप्यूटर इंटरनेट के माध्यम से उल्लंघन के आसान तरीके उपलब्ध है।
3. उल्लंघन करने वालों को पकड़ना या पहचान पाना बहुत मुश्किल है।



4. त्वरित उपचार का अभाव।
5. उल्लंघन का बहुत बड़ा कारण जागरूकता का अभाव।

### विश्लेषण

कॉपीराइट अधिनियम को जानने के लिए मोबाइल और गूगल मीट के माध्यम से तथा रूम मीटिंग के द्वारा साक्षात्कार लिए गए। साथ ही फॉर्म के द्वारा एक प्रश्नावली तैयार आँकड़े संग्रहित किए गए। 50 व्यक्तियों से डाटा लिया गया एवं 9 से साक्षात्कार लिए गए। इंटरनेट से कॉपी पेस्ट करते समय 39 व्यक्तियों को इस बात की जानकारी का एहसास नहीं था कि वह कॉपीराइट का उल्लंघन कर रहे हैं। कुछ अच्छा करने की चाहत में ऐसा किए जा रहे थे। उनको कॉपीराइट अधिनियम की कोई जानकारी नहीं थी। 20 को इसकी जानकारी थी। वह निश्चित थे कि उनका पकड़ा जाना इतना आसान नहीं है। उन्हें सजा का कोई भय नहीं था।

### निष्कर्ष एवं सुझाव

लॉकडाउन के पीरियड में कॉपीराइट के स्वामियों के अधिकारों का उल्लंघन बहुतायत में हुआ है। नकली सृजनकर्ताओं की संख्या में बढ़ोतरी हुई है तथा इससे बचने के लिए विशेष अधिकारियों की नियुक्ति, विशेष अदालतों का गठन, कारावास की अवधि में बढ़ोतरी तथा जुर्माने की रकम बढ़ाए जाने के सुझाव अनुशंसित है जिसके तहत कॉपीराइट अधिनियम में संशोधन अनुशंसित है।

1. जुर्माने की राशि को बढ़ाया जाना चाहिए।
2. कारावास की अवधि को बढ़ाया जाना चाहिए।
3. विधि की कठोरता अनिवार्य है।
4. त्वरित उपचार की व्यवस्था की जानी चाहिए।
5. विशेष अधिकारियों की नियुक्ति की जानी चाहिए।
6. विशेष अदालतों का गठन होना चाहिए।

□

### संदर्भ

- भारत में बौद्धिक संपदा अधिकार एवं विधि
- डॉक्टर व्हाय.एस. शर्मा
- बौद्धिक संपदा अधिकार विधि
- डॉक्टर एस.के. सिंह
- दैनिक भास्कर, समाचार-पत्र
- नई दुनिया, समाचार-पत्र
- प्रतियोगिता दर्पण; एवं
- प्रतियोगिता निर्देशिका

डॉ मंजू चंद्रा

## उत्तराखंड के ग्रामीण क्षेत्रों में ऑनलाइन शिक्षा की चुनौती

कोरोना ने इंसानी जीवन के हर पक्ष को प्रभावित किया है। मानवीय जीवन के कुछ हिस्से ज्यादा और कुछ कम प्रभावित हो सकते हैं। लेकिन हर पक्ष पर इसका कुछ-न-कुछ असर अवश्य पड़ा है। शिक्षा जगत् भी ऐसा क्षेत्र है जहाँ कोरोना का व्यापक असर पड़ा है। जैसा कि 16 मार्च, 2020 से ही देश के लगभग सभी स्कूल, कॉलेज, विश्वविद्यालय को बंद कर दिया और आदेश दिया गया कि ऑन लाइन शिक्षा के माध्यम से बाकी बचे कोर्स को पूरा कराया जाए। सरकार ने भी इस ओर ध्यान देते हुए पहले से मौजूद ऑन लाइन शिक्षा के प्लेटफार्मों जैसे स्वयं इवीजी पाठशाला, डिजीटल, लाइब्रेरी आदि का उपयोग करने का नोटिफिकेशन जारी कर दिए। विश्वविद्यालय, स्कूलों और कालेजों ने भी कोरोना से उत्पन्न समस्या को एक अवसर मानते हुए ऑन लाइन शिक्षा को अपना लिया। कोरोना संकट के दौर में तमाम शैक्षणिक गतिविधियाँ ऑन लाइन माध्यम से हो रही हैं। केंद्र सरकार ने ऑन लाइन शिक्षा के लिए कई सुविधाएँ प्रदान की हैं। केंद्रीय मानव संसाधन विकास मंत्रालय ने 'भारत पढ़े ऑन लाइन' अभियान की शुरुआत की है, जिसका मकसद है कि ऑन लाइन पढ़ाई को कैसे और बेहतर बनाया जा सकता है।

अब जहाँ एक तरफ ऑन लाइन शिक्षा से कोर्स पूरा हो चुका है, दूसरी तरफ यह सवाल उठता है कि ऑन लाइन शिक्षा में क्या सब कुछ ठीक चल रहा है? या वो कौन-कौन-सी चुनौतियाँ हैं, जिससे शिक्षक व विद्यार्थी दोनों प्रभावित हुए हैं? क्या उच्च शिक्षा से जुड़े करीब आठ करोड़ विद्यार्थी ऑन लाइन शिक्षा से जुड़ पा रहे हैं या शिक्षा जगत् के समस्या को अवसर में बदलने का प्रयास नाकाफी सिद्ध हो रहा है।

पिथौरागढ़	--	258
चंपावत	--	449
अल्मोड़ा	--	297
बागेश्वर	--	208
रूद्रप्रयाग	--	150
टिहरी	--	971
पौड़ी	--	339

उत्तरकाशी	--	513
नैनीताल	--	131
हरिद्वार	--	15
उधमसिंह नगर	--	287
देहरादून	--	697
चमौली	--	443

एक तरफ जहाँ इन दिनों स्मार्ट फोन ई-शिक्षा का एक बड़ा माध्यम बनकर उभरे हैं, वहीं यह भी सत्य है कि उत्तराखंड के ग्रामीण क्षेत्रों में बिजली तक नहीं पहुँच पाई और जहाँ बिजली पहुँची भी है वहाँ सभी के पास स्मार्ट फोन उपलब्ध नहीं हैं। न ही इंटरनेट की समुचित व्यवस्था है। इससे साफ जाहिर होता है कि ऑन लाइन शिक्षा ग्रामीण क्षेत्रों में आधारभूत ढाँचे की कमी सबसे बड़ी चुनौती है। साथ ही ग्रामीण क्षेत्रों में ई-शिक्षा के लिहाज से दूसरी बड़ी चुनौती डिजिटल संस्कृति का अभाव है। उत्तराखंड के दस जिले पहाड़ पर हैं और तीन जिले प्लेन में हैं। इस समय पूरी दुनिया में ऑन लाइन शिक्षा का आकर्षण बढ़ा है। वहीं छोटे बच्चों के लिए ऑन लाइन पढ़ाई बोल बन गई है क्योंकि बच्चों को कई किलोमीटर दूर पहाड़ पार कर नेटवर्क ढूँढ़ना पड़ता है। कोई दूसरों के घरों में कई किलोमीटर पैदल चलकर होमवर्क कर रहे हैं, जिससे पूरा दिन वहीं बीत जाता है। दूसरी तरफ स्मार्ट फोन लेने, रिचार्ज कराने, उसमें इंटरनेट डालने के लिए अभिभावकों की इनकम नहीं होती है।

तकनीकी शिक्षा ऑन लाइन शिक्षा की एक बड़ी समस्या है। अगर तकनीकी शिक्षा से जुड़े अध्यापकों और विद्यार्थियों को छोड़ दें तो बाकी लगभग सभी विषयों से जुड़े शिक्षकों और विद्यार्थियों को तकनीकी समस्या का सामना करना पड़ता है। आजकल छोटे बच्चों से लेकर बड़ों तक को टैबलेट, लैपटॉप, डैस्कटॉप और स्मार्ट फोन के सहारे पढ़ाया जा रहा है। ऐसे में अगर तकनीकी समझ किसी भी स्तर पर हावी होती है तो सीखने की क्षमता को सीधे प्रभावित करती है।

इसको लेकर कई विश्लेषक बहुत उत्साहित रहते हैं, तो कुछ अब भी इसकी उपयोगिता को सीमित मानते हैं। काफी हद तक यह सही भी है कि अभी तक दुनिया के विकसित देशों में ऑन लाइन शिक्षण पद्धति का कोई ठीक-ठाक स्वरूप निर्धारित नहीं हो सका है। कुछ ही महीनों पहले अमेरिका में ऑन लाइन शिक्षा कार्यक्रम को लेकर एक वार्षिक रिपोर्ट जारी की थी, जिसमें कई स्कूलों ने ऑन लाइन शिक्षा में काफी अच्छा प्रदर्शन किया। लेकिन इस रिपोर्ट में यह भी माना गया कि ऑन लाइन शिक्षा प्रणाली में अभी कई तरह के संसाधनों का निवेश किया जाना बाकी है। लेकिन ऐसा करने पर यह शिक्षा काफी महँगी हो जाएगी जिसको हर कोई आसानी से ग्रहण नहीं कर पाएगा।

कोरोना महामारी के इस समय में केंद्र सरकार, राज्य सरकार, यू.जी.सी. और विश्वविद्यालयों, कालेजों ने ऑन लाइन पढ़ाई का हल्ला मचाया हुआ है, बिना यह देखे कि इस व्यवस्था के

लिए कितने छात्रों के पास स्मार्ट फोन, लैपटॉप या कोई और संसाधन है या नहीं? और बिना यह जाने की इस नई व्यवस्था के लिए छात्र और शिक्षक कितना तैयार हैं?

संयुक्त राष्ट्र शैक्षणिक, वैज्ञानिक एवं सांस्कृतिक संगठन (यूनेस्को) के एक अध्ययन में सामने आया है कि कोरोना महामारी का सबसे अधिक प्रभाव छात्रों पर पड़ा है। दुनिया के 191 देशों के करीब 157 करोड़ छात्र इससे प्रभावित हुए हैं। इन प्रभावित छात्रों में भारत के लगभग 32 करोड़ छात्र भी शामिल हैं। इससे देश में एक नई तरह की असमानता को जन्म दे दिया है। इसी तरह अगर उत्तराखंड राज्य के डिग्री कॉलेजों की बात करें तो राज्य के 105 डिग्री कॉलेजों में से मात्र 27 डिग्री कॉलेजों में ब्राडबैंड के कनेक्शन हैं। कॉलेजों में प्राध्यापक, व्यक्तिगत प्रयासों से छात्रों को ऑन लाइन शिक्षा दे रहे हैं। इससे कॉलेजों में ऑन लाइन शिक्षा की वास्तविकता का पता लगाया जा सकता है। राज्य के डिग्री कॉलेजों में ऑन लाइन शिक्षा की स्थिति कनेक्टिविटी नहीं होने के कारण सुधर नहीं पा रही है। इसी कारण लॉकडाउन के दौरान कॉलेजों में शुरू हुई ऑन लाइन शिक्षा की स्थिति भी काफी कमजोर रही। अगर आँकड़ों में नजर डाली जाए तो राज्य के 105 डिग्री कॉलेजों में एक लाख दो हजार छात्र हैं इसमें से मात्र 54 फीसदी छात्र ही ऑन लाइन शिक्षा से जुड़ पाए हैं जिसमें से अधिकांश छात्र सुगम कॉलेजों से हैं। दुर्गम डिग्री कॉलेजों की स्थिति और भी बदतर है। सुदूरवर्ती क्षेत्रों में रहने वाले डिग्री कॉलेजों में पढ़ने वाले छात्रों को नेट कनेक्टिविटी के लिए घर से 15 से 30 किलोमीटर तक पैदल आना पड़ता है, तब जाकर वह अपने पाठ्यक्रम को अपलोड कर पाते हैं। इन हालातों में कॉलेजों की वास्तविक ऑन लाइन शिक्षा की स्थिति का आकलन किया जा सकता है। इस ऑन लाइन शिक्षा (पढ़ाई) से गाँव के छात्र वंचित हो गए हैं और शहरों में भी वो छात्र वंचित हो गए हैं जिनके पास स्मार्ट फोन, लैपटॉप या महँगे गैजेट नहीं हैं।

गढ़वाल विश्वविद्यालय उत्तराखंड का एकमात्र केंद्रीय विश्वविद्यालय है। वहाँ भी 16 मार्च, 2020 के बाद ऑन लाइन पढ़ाई प्रारंभ की गई लेकिन 30 से 40 फीसदी से अधिक छात्रों को विश्वविद्यालय ऑन लाइन पढ़ाई से नहीं जोड़ पाया क्योंकि उत्तराखंड के लगभग अधिकांश महाविद्यालयों में आर्थिक रूप से कमजोर तबके के छात्रों का प्रतिशत अधिक है, जिस कारण उनसे ऑन लाइन पढ़ाई के लिए सबसे आवश्यक टूल स्मार्ट फोन की उम्मीद करन या उसके लिए फोर्स करना बेईमानी सी होगी। ग्रामीण क्षेत्रों में ऑन लाइन पढ़ाई संकट के समय में एक माध्यम हो सकता है लेकिन अनिवार्य नहीं।

भारतीय इंटरनेट और मोबाइल समूह के 2019 की रिपोर्ट कहती है कि भारत में 67 फीसदी पुरुषों की तुलना में केवल 33 फीसदी महिलाएँ ही इंटरनेट का प्रयोग करती हैं और ग्रामीण भारत में यह असमानता 72 फीसदी पुरुषों की तुलना में केवल 29 फीसदी रह जाती है। अगर आँकड़े इस तरह से हैं तो फिर गाँवों के देश में हम ऑन लाइन शिक्षा को कैसे सभी छात्र-छात्राओं तक समान रूप से पहुँचा पाएँगे जिनके हिस्से खेतीबाड़ी और घर के तमाम कामों के बाद पढ़ाई आती है।

हिंदुस्तान ई-संवाद में दून इंटरनेशनल स्कूल के उप-प्रधानाचार्य दिनेश बर्तवाल ने अपने विचार रखे जिसमें उनके द्वारा ऑन लाइन शिक्षा के बारे में अपने अनुभव साझा किए गए। उन्होंने कहा कि भौगोलिक स्थिति के आधार पर देखें तो अभी हमारे प्रदेश में कई जिलों में सब जगह इंटरनेट की सुविधा नहीं है। सुविधाओं व संसाधनों की कमी बड़ी चुनौती है। साथ ही मौजूदा समय में कोरोना महामारी को देखते हुए ऑन लाइन शिक्षा, शिक्षा का विकल्प नहीं हो सकता। सभी छात्र-छात्राओं के लिए ऑन लाइन पढ़ाई कर पाना आसान नहीं है, हमें शुरूआती चरण में पेश आ रही समस्याओं को व्यवहारिक रूप से समझाना होगा और समाधान की तरफ बढ़ना होगा।

कोरोना वायरस आज वैश्विक चिंता का विषय बना हुआ है। इसके चलते उत्तराखंड समेत देशभर के लोग लॉकडाउन का सामना कर रहे हैं जिससे पढ़ाई व कारोबार के साथ-साथ कई चीजों में बदलाव आया है। ऑन लाइन शिक्षा का जो स्वरूप उभरकर सामने आया है उसमें अधिकांशतः कॉलेज व विश्वविद्यालय टॉइम टेबल के उसी स्वरूप को अपना रहे हैं जो वह कक्षाओं में चला रहे थे। ऐसे में समस्या यह आती है कि क्या विद्यार्थी और शिक्षक सुबह से शाम तक कक्षाएँ चला सकते हैं और पूरा दिन बैठकर लैपटॉप या स्मार्ट फोन चला सकते हैं जिससे साबित होता है कि ऑन लाइन शिक्षा कभी रेगुलर कक्षाओं की तरह नहीं चलाई जा सकती।

वर्तमान में ऑन लाइन कक्षाएँ सामान्यतः चार से पाँच घंटे तक चलाई जा रही हैं। उसके साथ ही गृह कार्य के नाम पर एसाईनमेंट और प्रोजेक्ट दिए जा रहे हैं। जिसका औसत देखा जाए तो विद्यार्थी और शिक्षक दोनों लगभग 7 से 8 घंटे ऑन लाइन व्यतीत कर रहे हैं। जो कि उनकी मानसिक व शारीरिक स्थिति के लिए घातक है। छोटे बच्चों के लिए तो अति नुकसानदेय है। कई अभिभावकों द्वारा फेसबुक पोस्ट की जाती है कि उनके बच्चों की आँखों में समस्या पैदा हो रही है और उनका मानसिक संतुलन भी खराब हो रहा है। जिससे अकेलापन, अवसाद आदि पैदा हो रहा है। इन सभी समस्याओं से बचने के लिए हमें चिंतन की आवश्यकता है, जिससे देश के भविष्य (इन बच्चों) को बचाया जा सके। इसलिए सरकार को शिक्षा के क्षेत्र में विशेष ध्यान देने की आवश्यकता है। शिक्षा व्यवस्था में राज्य सरकारों को सलाह देने वाला अंतिम कड़ी शिक्षक है, सरकार द्वारा शिक्षकों की सलाह लिए बगैर उन पर ऑन लाइन शिक्षा थोप दी गई। शिक्षा एक बहुआयामी प्रक्रिया है। ई-लर्निंग में शिक्षा प्रक्रिया का पूर्ण बोझ केवल विद्यार्थियों पर रखा। यू.जी.सी. ने खुद पिछले महीने लगभग 25 प्रतिशत शैक्षणिक कार्य ई-लर्निंग के माध्यम से ऑन लाइन करने का आदेश जारी किया है। इसमें व्हाट्सएप (whatsapp) जैसे सोशल मीडिया द्वारा अध्ययन को शिक्षण का आधार माना जाता है। जो सोशल मीडिया कंपनियों को बढ़ावा देने के लिए उठाया गया कदम है। सरकार द्वारा चलाई गई ई-लर्निंग का विरोध नहीं है, पर उन्हें शिक्षकों के मार्गदर्शन में होना चाहिए। यह नीति समुचित शिक्षा में बाधक है जो पूरे देश की विविध भौगोलिक, सांस्कृतिक व सामाजिक विविधता

पर विचार किए बिना थोपने की कोशिश है। हमारे देश की वर्तमान बेरोजगारी दर रिकार्ड तोड़ 27 प्रतिशत तक पहुँच गई है, वहीं ऑन लाइन शिक्षा कुशल व रोजगार योग्य लोगों को पैदा नहीं करेगी, इससे एक ऐसी युवा पीढ़ी जन्म लेगी जो बिना मानवीय मूल्यों के बेरोजगार व अकुशल शिक्षित होंगे। साथ ही शिक्षक की मुख्य भूमिका शिक्षा क्षेत्र में धीरे-धीरे समाप्त हो जाएगी और सारा कार्य तकनीक व कंप्यूटर को दे दिया जाएगा। इसके अतिरिक्त ऑन लाइन शिक्षा के माध्यम से गरीब पिछड़े वर्ग और लड़कियाँ शिक्षा में पिछड़ जाएँगी, केवल पैसे वाले शिक्षा बाजार में शिक्षा प्राप्त कर सकेंगे।

इस तरह की शैक्षिक नीति सामान्य जनसंख्या की सामाजिक आर्थिक पृष्ठभूमि पर विचार किए बिना उठाया गया कदम है, आम जनता के लिए घर पर ऑन लाइन पढ़ाई हेतु उपयोगी तकनीकों का पहुँच पाना असंभव है। यह सोच कर चलना कि शिक्षा प्राप्ति केवल कुछ घरों में स्मार्ट फोन के माध्यम से छात्रों तक पहुँचेगी, हास्यप्रद होगा। ऑन लाइन शिक्षा आदर्श नहीं कही जा सकती; पर उसके उपयोग को अवसर के रूप में ग्रहण करना मजबूरी को सकारात्मक दिशा दे सकता है। निःसंदेह शिक्षक के व्यवहार, हाव-भाव और सामाजिक अंतःक्रिया भी छात्र/छात्राओं को सीखने के लिए जो अवसर देते हैं, उस तक पहुँच पाना संभव नहीं होगा।

□

#### संदर्भ

- हिंदुस्तान, 20 जून, 2020, शनिवार पेज नं. 5, 10
- गिरीश फोड़े : वर्ल्ड फेडरेशन ऑफ डैमोक्रेटिक यूथ के पूर्व उपाध्यक्ष : (शिक्षा बचाओ सिविल एक्शन कमेटी)
- 25 जून, 2020 गुरुवार, हिंदुस्तान, पेज नं. 8
- <https://www.livehindustan.com>
- <https://www.amarujala.com>
- <https://www.jagran.com/dehradun>

## संतोष बंसल

### भारतीय संविधान में आरक्षण व बाबा साहब अंबेडकर

चूँकि पिछले कुछ वर्षों से देश के प्रत्येक कोने और क्षेत्र से आरक्षण की माँग जोर पकड़ रही है और जातियों के साथ अनेकानेक समुदाय भी अपने लिए 'रिजर्वेशन' या आरक्षण चाहते हैं, ऐसे में यह मुद्दा गहन और गंभीर विमर्श की माँग करता है। इसके साथ ही जगह-जगह छात्रों के नेतृत्व में चल रहे विरोध प्रदर्शनों में भारतीय संविधान को आधार बनाते हुए कहा जा रहा है कि सत्तारूढ़ सरकार मौलिक सांविधानिक सिद्धांतों को कमजोर कर रही है। ऐसे में आरक्षण की चर्चा करने से पूर्व हम संविधान के संदर्भ में उसके निर्माता डॉक्टर अंबेडकर की मूलभूत सोच के विषय में जानेंगे। जैसा कि उन्होंने 9 दिसंबर, 1946 को संविधान सभा की बैठक के अपने भाषण में कहा था, "संविधान सभा में आने के पीछे मेरा उद्देश्य अनुसूचित जातियों के हित की रक्षा करने से अधिक कुछ नहीं था।" और इन्हीं के उद्धार के लिए उन्होंने आरक्षण का प्रावधान रखा था, जिसके लिए 10 साल की अवधि निश्चित की थी। दूसरे, उनका कहना था कि किसी भी संविधान का एक मूल उद्देश्य नागरिकों के निहित अधिकार हैं, जिसकी पूर्ति के लिए मौलिक अधिकारों की भी सूची शामिल की गई थी। (जिसमें शिक्षा का अधिकार सांविधानिक संशोधनों के बाद आया है।) अपनी इसी सोच को असली रूपरेखा प्रदान करने के लिए डॉक्टर अंबेडकर और अन्य भारतीय संविधान निर्माताओं ने असंख्य संविधान प्रारूपों से प्रेरणा प्राप्त की, जिनमें अमेरिकी और फ्रांसिसी संविधान भी शामिल थे।

अब अगर हम अपने संविधान की निर्माण प्रक्रिया को जाने तो आजादी से पहले ही 1946 में संविधान पर काम शुरू हो गया था। भारतीय संविधान में कुल 1,46,385 शब्द हैं। कंपरेटिव कांस्टिट्यूशंस प्रोजेक्ट (सी.सी.पी.) के डाटा के अनुसार भारतीय संविधान का आकार ज्यादातर उपन्यासों और दुनिया के दूसरे तमाम संविधानों से कहीं बड़ा है। इतनी लंबाई के बावजूद भारत का संविधान दुनिया का सबसे व्यापक संविधान नहीं है, क्योंकि सी.सी.पी. के अनुसार दुनिया भर के संविधानों में 70 प्रमुख विषय लिए गए हैं, जबकि भारतीय संविधान 60 प्रतिशत विषयों को ही अपने दायरे में लेता है। संविधान का एक केंद्रीय कार्य शासन की तीन शाखाओं -- विधायिका, कार्यपालिका और न्यायपालिका को अलग करना एवं उनके बीच परस्पर समन्वय का ढाँचा भी निर्मित करना है। जहाँ तक नागरिकों के अधिकारों की बात है, सी.सी.पी. के अनुसार जहाँ अमेरिकी संविधान अपने नागरिकों को 35 अधिकारों का

अनुदान देता है, वहीं भारतीय संविधान 44 अधिकार देता है। हालाँकि अमेरिका और भारत के संविधान अपने नागरिकों को वैश्विक औसत से कम अधिकार देते हैं, क्योंकि वैश्विक स्तर पर अभी संविधानों ने अपने नागरिकों को औसतन 50 अधिकार दे रखे हैं। वर्तमान समय में आरक्षण से भी अधिक महत्वपूर्ण मुद्दा 'स्वास्थ्य के मौलिक अधिकार का है' क्यों कि कोविड-19 जैसी महामारी ने 'हेल्थ सर्विसिज' को अहम् बना दिया है।

अब अगर इसकी शक्ति और महत्ता को समझें तो यद्यपि भारत की संविधान सभा में इस बात पर बहस हुई थी कि संसदीय प्रणाली और राष्ट्रपति प्रणाली के बीच किसे चुना जाए? और तब संविधान में 'लचीलेपन के साथ मजबूती' की अवधारणा ही इसके निर्माताओं का आधार बनी। अपनी पुस्तक 'इंडिया ऑफ्टर गाँधी हिस्ट्री ऑफ द वर्ल्ड्स लार्जस्ट डेमोक्रेसी' में इतिहासकार रामचंद्र गुहा लिखते हैं, 'संविधान निर्माताओं का यह मानना था कि विविधता को देखते हुए देश को एक मजबूत सरकार की जरूरत है। उन्हें लगा कि केवल संसदीय प्रणाली ही ऐसी मजबूती दे सकती है। इसीलिए ब्रिटेन जैसी संसदीय प्रणाली को ही भारत ने अपनाया। ब्रिटेन में निर्वाचित विधायिका ही कानूनों को लागू करने के लिए जिम्मेदार है। इस व्यवस्था में कार्यकारी (प्रधानमंत्री) ही सरकार के प्रशासनिक प्रमुख के रूप में कार्य करता है और ऐसी व्यवस्था में एक स्वतंत्र न्यायपालिका भी कानूनों को बनाएँ रखने के लिए जिम्मेदार होती है। "इस प्रकार तमाम देशों की विधायिका शक्ति को अगर हम एक साथ देखें तो भारत की विधायिका के पास 190 देशों के औसत से कम शक्ति है, मगर इसकी कार्यपालिका में अधिक शक्ति है और न्यायपालिका के पास वैश्विक औसत से अधिक स्वतंत्रता हासिल है। इस प्रकार सत्तर वर्ष पहले 26 जनवरी, 1950 को लागू हुआ हमारा संविधान दुनिया के बेहतरीन संविधानों में से एक है।

लेकिन संविधान निर्माता डॉक्टर भीमराव अंबेडकर का मानना था कि आजादी का मतलब सिर्फ अधिकार पाना भर नहीं है। उन्होंने अपने भाषण में कहा भी था, "स्वतंत्रता आनंद का विषय है, पर स्वतंत्रता ने हम पर बहुत जिम्मेदारियाँ डाल दी हैं।" इसीलिए उन्होंने हमारे संविधान में सरकार और नागरिकों के अधिकारों के साथ ही उनके कर्तव्यों का भी विस्तार से उल्लेख किया है। उन्होंने चिंता व्यक्त करते हुए यह भी अपने भाषण में कहा था कि जाति एवं धर्म के रूप में हमारे पुराने शत्रुओं के अतिरिक्त हमारे यहाँ विभिन्न और विरोधी विचारधारों वाले राजनीतिक दल होंगे। विदेश से अर्थशास्त्र में डॉक्टरेट की उपाधि अर्जित करने वाले पहले भारतीय बाबा साहब अंबेडकर को इस असलियत का भी पता था कि हमारे देश में 'हजारों जातियों में विभाजित लोग' एक राष्ट्र कैसे बनेंगे? इसीलिए सतर्क करते हुए उन्होंने कहा कि "हमें हमारे राजनीतिक प्रजातंत्र को एक सामाजिक प्रजातंत्र भी बनाना चाहिए। सामाजिक प्रजातंत्र एक ऐसी जीवन पद्धति है जो स्वतंत्रता, समानता और बंधुत्व को जीवन के सिद्धांतों के रूप में स्वीकार करती है। सामाजिक धरातल पर भारत में बहुस्तरीय असमानता है, कुछ को विकास के अवसर और अन्य को पतन के। कुछ लोग हैं, जिनके पास अकूत



संपत्ति है और बहुत लोग घोर दरिद्रता में जीवन बिता रहे हैं।” (डॉक्टर भीमराव अंबेडकर -- ‘आजादी सिर्फ अधिकार नहीं, जिम्मेदारी भी’, 25 नवंबर, 1949)

उस समय भी सामाजिक स्तर पर यह फर्क ऊँच-नीच और अमीर-गरीब के साथ स्त्री-पुरुष में भी लिंग भेद के रूप में विद्यमान था, इसीलिए संविधान सभा में एस.सी.एस.टी. आरक्षण के अतिरिक्त महिलाओं को आरक्षण देने का मुद्दा भी उठा। किंतु आप सभी को यह जानकार हैरानी होगी कि संविधान सभा में पंद्रह महिलाओं के शामिल होने के बावजूद महिलाओं को आरक्षण देने का सर्वसम्मति से विरोध किया गया। वर्तमान समय में जब महिलाओं के लिए 33 प्रतिशत आरक्षण की माँग हो रही है, तब बांबे से आई हंसा मेहता ने कहा था, “हमने कभी विशेषाधिकार नहीं माँगा है, हम केवल सामाजिक-राजनीतिक और आर्थिक न्याय मानते हैं।” पश्चिम बंगाल से आई रेणुका रे और मद्रास से आई.जी. दुर्गाबाई तथा राजकुमारी अमृत कौर सहित ज्यादातर महिलाएँ समान नागरिक संहिता के पक्ष में थी, जो पारित नहीं हुआ। संविधान सभा की इस पहली बैठक में 9 दिसंबर, 1946 की सुबह दिल्ली के कांस्टीट्यूशनल हॉल में 192 पुरुषों और 15 महिलाओं ने हस्ताक्षर किए थे। पंद्रह महिलाओं में से 13 उच्च वर्ण, वर्ग की शिक्षित महिलाएँ थी और इनके अलावा अकेली मुस्लिम बेगम ऐजाज रसूल व अकेली दलित 34 वर्षीय दक्षयानी वेलायुधन थी। केरल की दक्षयानी स्कूल और कॉलेज जाने वाली अपने समुदाय की पहली महिला थी। वे भारत की पहली दलित महिला स्नातक थी, जिन्होंने संविधान सभा में छूआछूत खत्म करने के लिए जोरदार तरीके से हस्तक्षेप किया।

फिर संविधान लागू होने के 40 वर्ष बाद नौवें दशक में मंडल आयोग की सिफारिश के बाद पिछड़ा वर्ग के लिए भी ओ.बी.सी. आरक्षण के साथ, अब यह कोटा कुल मिला कर 50 प्रतिशत कर दिया गया है। लेकिन इसके बावजूद भी यह मुद्दा इतना जटिल और पेचीदा हो गया है कि जातियों के आधार पर ‘रिजर्वेशन’ के लिए प्रदेशों के कोई न कोई समुदाय प्रदर्शन और अव्यवस्था फैलाए रखते हैं। जैसे प्रारंभ में राजस्थान में गुर्जरों एवं चार अन्य पिछड़े समुदाय को आरक्षण मिला था, वैसे ही आंध्र प्रदेश में कापू समुदाय, हरियाणा में जाट समुदाय, महाराष्ट्र में मराठों ने, गुजरात में पाटीदारों ने आरक्षण के लिए जोरदार माँग रखी। ये राज्य तमिलनाडु मॉडल अपनाना चाह रहे हैं, जहाँ कुल 69 फीसदी आरक्षण की व्यवस्था की गई है। हालाँकि केंद्र सरकार ने 1994 में 76वाँ संविधान संशोधन कर इसे नौवीं अनुसूची में डाल दिया है और यह मामला अभी उच्चतम न्यायालय में लंबित है। इसी तरह मराठा समुदाय का 68 प्रतिशत आरक्षण निर्धारित 50 फीसदी सीमा से अधिक है, जो देखना है कि कानूनी समीक्षा में टिकेगा या नहीं? तेलंगाना सरकार ने भी ओ.बी.सी. में मुस्लिम आरक्षण 4 से 12 प्रतिशत और एस.टी. आरक्षण छह से 10 प्रतिशत करने का बिल पारित किया। फिलहाल अब उत्तर प्रदेश का निषाद समुदाय एस.सी. के अंतर्गत और असम में छह जातियाँ अहोम, मोरान, मटक, छूतिया, कुचराजबंशी एवं आदिवासी एस.सी.एस.टी. का दर्जा देने की माँग कर रही हैं।

इन सबके अतिरिक्त उत्तर प्रदेश में दलितों और पिछड़ों के आरक्षण के बाँटवारे के लिए गठित सामाजिक न्याय समिति की रिपोर्ट के आधार पर अब एस.सी./एस.टी. और ओ.बी.सी. आरक्षण को बाँटने की तैयारी है। समिति ने अपनी रिपोर्ट में पिछड़ा वर्ग को तीन श्रेणियों में बाँट दिया है एवं तीनों को प्राप्त 27 प्रतिशत आरक्षण को 9-9-9 फीसदी आरक्षण देने का प्रस्ताव है। इनमें पिछड़ा वर्ग में 12, अति पिछड़ा में 59 और सर्वाधिक पिछड़ा में 79 जातियाँ रखी गई हैं। इसी तरह समिति ने एससी आरक्षण को भी तीन वर्गों में बाँटने की पैरवी की है, जिनमें दलित, अति दलित और महादलित तीन श्रेणियाँ प्रस्तावित की गई हैं। इनके 22 फीसदी आरक्षण को 7,7 और 8 के फार्मूले पर तीन हिस्सों में बाँटने का प्रस्ताव है तथा दलित वर्ग में 4, अति दलित में 37 और महादलित में 46 जातियों को रखने की सिफारिश की है। यद्यपि इस रिपोर्ट को लेकर राजनीतिक गलियारे में चर्चाएँ तेज होने लगी हैं एवं रिपोर्ट लागू किए जाने की स्थिति में जातीय राजनीति पर केंद्रित राजनीतिक दलों में घमासान मच सकता है। इसीलिए फिलहाल समिति की सिफारिश मुख्यमंत्री के पास ही है, क्योंकि सामाजिक न्याय समिति की रिपोर्ट लागू होने पर प्रदेश में यादव, ग्वाल, सुनार, कुर्मी सहित कई जातियाँ 27 फीसदी आरक्षण में से एक तिहाई आरक्षण पर सिमट जाएँगी, जोकि पिछले सत्तर वर्षों से 'क्रीमी लेयर' बनकर मलाई खा रही हैं।

इस प्रकार, संविधान निर्माण के बाद से ही जातियों का महत्व और जातीय गोलबंदी चुनावों में देखी जा रही है और आज यही जातियाँ भारतीय राजनीति को आधार दे रही हैं। भारतीय चुनावों ने आजादी के बाद से ही जाति केंद्रित राजनीति को उभार दिया और 'इसके बाद आरक्षण के प्रावधानों, आरक्षण केंद्रित विवादों और आंदोलनों ने अस्मिता की राजनीति को बलवान किया। पिछड़ी और दलित जातियों के उभार ने पहचान की राजनीति को आकार दिया। 90 के दशक में पहचान की राजनीति चुनावी लोकतंत्र में निर्णायक होकर उभरी। इसने अपनी सीमाओं के बावजूद भारतीय जनतंत्र का प्रसार भी किया और सीमांत पर बसे समुदायों की हिस्सेदारी कुछ हद तक सुनिश्चित भी की। पहचान की इस राजनीति का विस्तार इस हद तक हुआ कि भारतीय राजनीति में जाति आधारित दल बनने लगे। आजादी के पूर्व जातीय संगठन काम तो कर रहे थे, पर वे समाज सुधार और जाति उन्नयन के काम में लगे थे। अब जाति आधारित राजनीतिक दल की पहचान, राज्य केंद्रित योजनाओं और सत्ता में अपनी संख्या आधारित हिस्सेदारी से जुड़ गई। इसके लिए ये दल अपने सांसद, विधायक जिताकर उनके माध्यम से सरकार तथा सत्ता में अपनी हिस्सेदारी का दावा करने लगे।" ('जाति से आगे नहीं सोचती राजनीति' -- लेख हिंदुस्तान अखबार, 16 जुलाई, 2018, लेखक : श्री बद्रीनारायण, निदेशक जी.बी.पंत., सामाजिक विज्ञान संस्थान)

और अब जबकि सरकार ने फिर से अन्य पिछड़े वर्ग की आबादी के आँकड़े जमा करने की घोषणा कर दी है, जोकि 2021 की जनगणना में संकलित किए जाएँगे और ये आँकड़े सार्वजनिक रूप से सन 2024 में ही उपलब्ध हो पाएँगे। तो यह प्रश्न उठना लाजिमी है कि

यह केवल अनेक राजनीतिक दलों के दबाव या प्रशासन की जरूरतों के कारण किया जा रहा है या इसकी कोई राजनीति भी है? इसके पहले यह काम 87 साल पहले 1931 की जनगणना में हुआ था और तत्पश्चात् 2011 में जातीय आँकड़ों के संकलन की प्रक्रिया शुरू हुई थी, किंतु वे आँकड़े कई कारणों से सामने नहीं आ सके। वैसे साल 1980 में मंडल कमीशन रिपोर्ट ने भारतीय समाज में ओ.बी.सी. के रूप में 1257 जातियों और 52 प्रतिशत जनसंख्या को चिन्हित किया था। वैसे आगामी आँकड़ों से सबसे बड़ा फेरबदल चुनावी राजनीति में ही दिखेगा, क्योंकि इतने वर्षों में पिछड़ों के लिए मिली सरकारी सुविधाएँ कुछ जातियों के लिए ही सीमित रह गई है। ऐसे में इन आँकड़ों के उपरांत पिछड़ों की क्रीमी लेयर के अतिरिक्त शेष पिछड़े समाज को चिन्हित करके उनके मुद्दे उठाए जाएँगे? या फिर आरक्षण के भीतर आरक्षण की बात करके नेता और दल, इन्हें राजनीतिक समूह में एकत्रित करके चुनावों में फायदा उठाएँगे? यह तो आने वाला वक्त ही बताएगा। लेकिन आजकल भाजपा ऐसी जातियों और समूहों के विकास और उनकी राजनीतिक भागीदारी सुनिश्चित करने में लगी हुई है।

इन सबका नतीजा यह भी हो सकता है कि ओ.बी.सी. कोटे के लिए सामाजिक समूहों में राजनीतिक अवसरों पर कब्जे के लिए एवं विकास से संबंधित मुद्दों पर आपसी टकराव पैदा हो और इससे आरक्षण कोटे को लेकर भी दावे प्रतिदावे और संघर्ष बढ़ें। आजादी के 70 वर्ष के बाद जातियों के सही आँकड़े प्रशासन, नीति-निर्माण और शोध के लिए कार्य में मददगार साबित भी हो सकते हैं? या फिर राजनीति के हाथों में आते ही टकराव पैदा करने वाले भी? किंतु अंततः जब हम बाबा आंबेडकर और उनकी आरक्षण नीति के तहत इन स्थितियों का आकलन करते हैं तो ये हताश करने वाली है। क्योंकि पिछले तीस-चालीस सालों समाज के भीतर 'परस्ट्रेशन' या तनाव पैदा हुआ है, जिसमें प्रतिभा का अवमूल्यन तो हुआ ही है, साथ ही जिन्हें आरक्षण का लाभ मिलना चाहिए, वे सभी लोग उससे वंचित हैं। बाबा ने जिस सोच के तहत निचले पायदान पर खड़े लोगों के उत्थान के लिए आरक्षण का रास्ता बनाया था, उस पर केवल आर्थिक स्थिति के आधार पर ही आरक्षण होना चाहिए, तभी समाज के हाशिये पर पड़े लोगों को केंद्रीय धारा में शामिल किया जा सकेगा। बाबा आंबेडकर बहुत दूरदर्शी व्यक्ति थे और वे स्वयं भुक्तभोगी भी। इसीलिए उन्होंने बहुत सोच-समझ के साथ भारत के सांविधानिक लचीलेपन की रूपरेखा तैयार की थी, जिसमें सबको जगह देने की क्षमता दिखती है। संविधान को अपने अनुरूप सुधार लेने का इसमें जो चलन और विधा है उसी में भारतीय संविधान की शक्ति और सामर्थ्य है।

□

डॉ. निशा केवलिया शर्मा

## कोविड-19 संकट और प्रवासी मजदूरों की समस्याएँ

विधि भारती परिषद् द्वारा दिनांक 1 मई, 2020 को मजदूर दिवस के अवसर पर 'प्रवासी मजदूरों की कोविड-19 संकट के कारण पैदा हुई 'समस्या एवं समाधान' विषय पर एक-दो सत्र का राष्ट्रीय वेबनॉर का आयोजन किया गया जिसमें देश के विभिन्न प्रदेशों से प्रतिभागियों द्वारा सहभागिता की गई। विधि भारती परिषद् की महासचिव और 'महिला विधि भारती' पत्रिका की प्रधान संपादक सन्तोष खन्ना जी ने वेबनॉर में उपस्थित सभी प्रतिभागियों का स्वागत करते हुए कहा कि "मई दिवस कामगारों के अधिकार सुनिश्चित करने के लिए ही मनाया जाता है पर समय की विडंबना देखिए कि विश्व के कोरोना वायरस संकट के वर्तमान काल में उनको ही सब से अधिक कष्ट उठाना पड़ रहा है।"

लॉकडाउन के आरंभ से ही वह अपने घरों को लौट जाना चाहते थे परंतु आने-जाने के साधन बंद होने के कारण यह संभव नहीं था और सरकारें भी चाहती थी कि 'जो जहाँ है, वहीं रहे' ताकि कोरोना को फैलने से रोका जा सके। परंतु लॉकडाउन लंबा चलने के कारण कामगार बेबसी और बेचैनी का शिकार हो रहे थे, समस्याएँ कई प्रकार की थी। अब समाचार यह है कि सरकार ने उन्हें उनके घरों में पहुँचाने का फैसला कर लिया है। उन्हें घरों तक पहुँचाने में भी कई समस्याएँ आएँगी। आज इन्हीं सब मुद्दों पर चर्चा की जाएगी और डॉ. गोविंद गोयल जी से अनुरोध है कि वह इस वेबनॉर का संचालन करें।

सर्वप्रथम डॉ.के.एस. भाटी, संकायाध्यक्ष आई.एम.एस. विधि महाविद्यालय, नोएडा ने अपने विचार साझा करते हुए कहा कि वर्तमान में प्रवासी श्रमिकों को उनके घरों तक सुरक्षात्मक तरीके से पहुँचाया जाना चाहिए और यह भी सुनिश्चित हो कि उन्हें कम-से-कम असुविधा हो। उन्होंने यह भी कहा कि हमारे यहाँ श्रम क़ानूनों की कमी नहीं है, आवश्यकता उनके समुचित क्रियान्वयन की है। यदि श्रम क़ानूनों का शुरू से ही प्रभावी रूप से पालन किया जाता तो आज यह समस्या इतनी गंभीर नहीं होती। सामाजिक विचारक, कवि एवं संपादक श्री आशीष कंधवे ने सरकार द्वारा वर्तमान परिस्थिति में प्रवासी मजदूरों को उनके घर पहुँचाने की व्यवस्था किए जाने पर जोर दिया, वरिष्ठ अधिवक्ता श्री सत्यनारायण व्यास ने अपने विचार व्यक्त करते हुए कहा कि शासन को वर्तमान परिस्थिति में जो समस्या आ रही है उसका समाधान करने का एक तरीका यह हो सकता है कि संबद्ध सरकारें प्रवासी मजदूरों की पहचान हेतु पहचान पत्र जारी करें। उन्होंने यह भी बताया कि प्रवासी मजदूरों से संबंधित विधि में

इस हेतु प्रावधान भी किए गए हैं। ज़ाकिर हुसैन कॉलेज, दिल्ली विश्वविद्यालय की पूर्व एसोसिएट प्रोफ़ेसर डॉ. प्रवेश सक्सेना ने अपना मत व्यक्त करते हुए कहा कि शासन को प्राथमिक रूप से प्रवासी मज़दूरों को उनके घर पहुँचाने की व्यवस्था किए जाने की आवश्यकता है और इस संबंध में राज्य सरकारों को आपस में बातचीत कर कामगारों की वापसी को सुनियोजित ढंग से सुनिश्चित करना चाहिए।

डॉ. सुदर्शन वर्मा, विभागाध्यक्ष और प्रोफ़ेसर, स्कूल ऑफ़ लीगल स्टीडीज़, बाबा साहेब अंबेडकर विश्वविद्यालय, लखनऊ ने प्रवासी कामगारों की घर वापसी की समस्या पर कहा कि इन कामगारों की घर वापसी के समय केवल स्क्रीनिंग होगी जिससे कोरोना का सही पता नहीं चलता और; दूसरा, घर पहुँचने पर राज्य सरकारों को उन्हें क्वॉरनटाइन करना होगा, अगर ऐसा नहीं किया गया तो अगर उनमें कोई कोरोना पॉज़िटिव होगा तो उससे गाँवों में कोरोना फैलने का खतरा बना रहेगा, राज्य सरकारों को इस संबंध में हर कदम फूँक-फूँक कर रखना होगा।

डॉ. विदुषी शर्मा अकादमिक कॉउंसलर इग्नू ने कहा कि प्रवासी मज़दूरों के प्रति मानवीय दृष्टिकोण अपनाए जाने की आवश्यकता है। डॉ. निशा केवलिया विभागाध्यक्ष विधि एवं विधायी विभाग, सेज़ विश्वविद्यालय, इंदौर ने विचार व्यक्त किया कि ग्राम पंचायतों को सक्षम बनाया जाए और गाँवों को स्वावलंबी बनाया जाए ताकि अधिकांश कामगारों को स्थानीय स्तर पर रोज़गार मिले और वर्तमान जैसे किसी गंभीर संकट के समय उन्हें आज की तरह विपरीत परिस्थितियों का सामना न करना पड़े। डॉ. अंजली सिंह ने प्रवासी मज़दूरों की मनोदशा पर पड़ने वाले प्रभावों की ओर ध्यान आकर्षित किया। श्रीमती स्वाति श्रीवास्तव, सहायक प्रोफ़ेसर (विधि) सेज़ विश्वविद्यालय, इंदौर ने प्रवासी मज़दूरों के प्रति मानवीय दृष्टिकोण अपनाए जाने की आवश्यकता बताई और राज्य सरकारों द्वारा भेदभावपूर्ण व्यवहार को छोड़कर समस्या का समाधान करने का सुझाव दिया। मानव अधिकार के पक्षधर डॉ. आलोक चांटिया जी द्वारा प्रवासी मज़दूरों के लिए राज्य सरकारों को समुचित प्रबंध करने की आवश्यकता पर बल दिया गया। दिल्ली विश्वविद्यालय के श्यामा प्रसाद मुखर्जी कॉलेज की असीसटेंट प्रोफ़ेसर डॉ. उर्मिल वत्स ने प्रवासी कामगारों की समस्याओं पर प्रकाश डालते हुए बताया कि लॉकडाउन अवधि में अनेक एन.जी.ओ. ने उनके भोजन की व्यवस्था की थी किंतु हो यह रहा था कि कई इलाकों में तो ज़रूरत से ज़्यादा भोजन की व्यवस्था थी और कहीं कोई व्यवस्था नहीं थी, जिसके कारण कुछ कामगारों तक सहायता नहीं पहुँच नहीं पा रही थी। अतः इस तरह के कार्यों को सुनियोजित ढंग से किया जाए ताकि उनसे सभी लाभान्वित हो सकें।

श्रीमती ऋचा श्रीवास्तव, सहायक प्रोफ़ेसर, विधि, सेज़ विश्वविद्यालय इंदौर ने प्रवासी मज़दूरों की समस्या पर विचार व्यक्त करते हुए सुझाव दिया कि मज़दूरों को उनके घर पहुँचाने के लिए रेल परिवहन के साथ ही सड़क परिवहन का भी पूर्ण सावधानी के साथ समुचित प्रयोग किया जाए।

श्रीमती नीति निपुण सक्सेना सहायक प्राध्यपक विधि सेज़ विश्वविद्यालय इंदौर ने प्रारंभिक

आवश्यकता मज़दूरों को उनके घर पहुँचाए जाने की बताई। इस अवसर पर प्रयागराज से राज ऋषि टंडन कन्या महाविद्यालय की एसोसिएट प्रोफेसर डॉ. नीलिमा सिंह ने भी अपने विचार व्यक्त करते हुए सुझाव दिया कि मज़दूरों की प्राथमिक आवश्यकताओं की पूर्ति की जाएँ और उन्हें अपने घर पहुँचाए जाने के प्रबंध किए जाएँ, इसके लिए उनके कोरोना संबंधी सभी प्रकार के टेस्ट कर उन्हें आवश्यक अवधि तक उनके घर में या अन्य स्थानों पर क्वॉरंटीन भी किया जाए। दिल्ली के पूर्व मेट्रो पोलिटन मैजिस्ट्रेट श्री ओम सपरा ने कहा कि “वैश्विक आपदा कोरोना वायरस के कारण घोषित लॉकडाउन में अनेक बेसहाय, निरीह, बेघर प्रवासी श्रमिक या प्राइवेट कर्मचारी और प्रवासी छात्र, साइकिल या रिक्शा पर या सड़क पर बेतहाशा निरंतर चलते हुए, दर-ब-दर भटकते, भूखे-प्यासे, पैदल मीलों चल कर कुछ अपने घर पहुँचे किंतु उन्हें कितनी कठिनाई हुई होगी। कामगार वर्ग तो हमारे देश की रीढ़ हैं, इस राष्ट्र के सम्मानित नागरिक हैं। इनके समुचित आवास, भूख, प्यास, बीमारी आदि समस्याओं को उनके नियोजक अनदेखा करते हैं और अपनी जिम्मेदारी से मुकर रहे हैं तो केंद्र सरकार का प्रथम दायित्व है कि उनका तत्काल आवश्यक प्रबंध करे और आपदा अधिनियम के अंतर्गत ज़रूरी आदेश भी जारी करे। कुछ बेसहारा लोग तो रास्ते की पीड़ा नहीं बर्दाश्त कर सके और रास्ते में ही दम तोड़ दिया। सर्वप्रथम, उनको अपने-अपने घर, गाँव जाने के लिए निशुल्क सहायता दी जानी चाहिए। प्रत्येक क्षेत्र के ए.डी.एम. या एस.डी.एम. को यह दायित्व दिया जाना ज़रूरी है।” माननीय श्री सत्यप्रकाश जी ने भी इस विषय पर अपने विचार साझा करते हुए कहा कि मज़दूर किसी भी देश की रीढ़ की हड्डी की तरह है। अतः सरकारों द्वारा उसे सम्मान देना चाहिए और उसकी आवश्यकता और सुरक्षा का ध्यान रखना चाहिए। कार्यक्रम का संचालन श्री गोविंद गोयल, एसोसिएट प्रोफेसर, विधि, आई.एम.एस. विधि महाविद्यालय द्वारा किया गया। इस कार्यक्रम में डॉ. संजीव कुमार, डॉ. जयश्री नदेश्वर, डॉ. सौम्य चौधरी, विकल्प श्रीवास्तव, ज्योति तिवारी, प्रियंका केवलिया, सपना, राजेश, नयन-निश्चल तथा कुछ अन्य प्रतिभागियों ने विचार व्यक्त किए और भाग लिया।

अंत में, श्रीमती संतोष खन्ना ने सभी प्रतिभागियों के प्रति आभार व्यक्त किया।

□

डॉ. सुनीता श्रीवास्तव

## घरेलू हिंसा के आयाम और कोविड-19

कहा जाता है कि कोई व्यक्ति अथवा समाज कितना सुसंस्कृत है इस का पता उस समाज व व्यक्ति के द्वारा नारी के प्रति किए जाने वाले व्यवहार से लगाया जा सकता है। हम अपने देश की सदियों पुरानी सभ्यता एवं संस्कृति पर नाज करते नहीं थकते हैं, परंतु हमारे देश की स्त्री का संत्रास, संघर्ष और संकटों से भरा जीवन क्या सभ्यता व संस्कृति पर किए जाने वाले हमारे मिथ्या अभिमान पर अनेक प्रश्न चिन्ह नहीं लगाता? नारी के प्रति बढ़ रही घरेलू एवं बाहरी हिंसा, क्या हमारी संस्कृति विरासत को कलंकित नहीं करती?

वैसे तो घरेलू हिंसा आज की समस्या नहीं है अपितु हर काल और हर समय महिलाओं को किसी-न-किसी कारणवश घरेलू हिंसा का शिकार होना पड़ता है। इसलिए इस समस्या की गंभीरता को ध्यान में रखते हुए 21वीं शती के पहले दशक में अर्थात् वर्ष 2005 में संसद ने घरेलू हिंसा पर अंकुश लगाने के लिए एक प्रभावी कानून बनाया। अब उस कानून को लागू हुए डेढ़ दशक हो गया परंतु इस समस्या का अभी भी पूरा निदान नहीं हो सका है। कोरोना वायरस की महामारी के कारण विश्व के अनेक देशों में और संपूर्ण भारत में भी लॉकडाउन लगाना पड़ा है और संपूर्ण लॉकडाउन लगभग जून, 2020 तक चला। इस लॉकडाउन ने परिवारों के लिए कई समस्याएँ तो पैदा की, किंतु इसके कारण परिवार के सदस्यों को साथ-साथ रहने का सुनहरा अवसर प्राप्त हुआ था जो कि पहले काम-काज की व्यस्तता के कारण संभव नहीं हो पाता था। अनेक परिवारों ने इस अवसर का अवश्य ही रचनात्मक रूप से उपयोग किया होगा किंतु इस काल के दौरान यह बात भी ध्यान में लाई गई कि इस दौरान घरेलू हिंसा के मामलों में अप्रत्याशित रूप से वृद्धि हो गई। ऐसा केवल भारत में ही नहीं हुआ, बल्कि विश्व के कई देशों में घरेलू हिंसा के मामलों में बहुत वृद्धि हो गई। यद्यपि लॉकडाउन के चलते सभी महिलाएँ घरेलू हिंसा को ले कर शिकायतें आदि भी दर्ज नहीं करवा पाईं। कहा जाता है कि घरेलू हिंसा की शिकार 86 प्रतिशत महिलाओं ने घरेलू हिंसा के विरुद्ध कोई शिकायत नहीं की। 25 मार्च, 2020 से 31 मई, 2020 की अवधि के दौरान घरेलू हिंसा की 31,1,477 शिकायतें दर्ज की गईं। इन 68 दिनों की लॉकडाउन की अवधि में दर्ज शिकायतें पिछले दस वर्षों में इसी अवधि के दौरान दर्ज शिकायतों से बहुत अधिक हैं जबकि 77 प्रतिशत प्रताड़ित महिलाओं ने तो इस घटनाओं का किसी से भी उल्लेख नहीं किया है अर्थात् वह इस शोषण

को चुपचाप पी गई। जिन 14.3 प्रतिशत महिलाओं ने सहायता माँगी भी तो उनमें से 7 प्रतिशत महिलाएँ ही पुलिस, वकीलों या सामाजिक सेवा संगठनों या डॉक्टरों तक पहुँच पाई। पुलिस ऐसी प्रताड़ित महिलाओं की सहायता करती है परंतु मामला पुलिस तक पहुँचने पर ही वह मदद कर सकती हैं।

राष्ट्रीय विधि सेवा प्राधिकरण द्वारा हाल में दिए गए मामलों की संख्या से यही पता चलता है कि लॉकडाउन के 69 दिनों में घरेलू हिंसा के मामलों में हर राज्य में वृद्धि हुई है। इन आँकड़ों के अनुसार भारत के उत्तराखंड में घरेलू हिंसा के सबसे अधिक आँकड़े सामने आए हैं। हरियाणा घरेलू हिंसा के मामलों में दूसरे नंबर पर और दिल्ली तीसरे नंबर पर है। तेलंगाना में भी महिलाओं को घरेलू हिंसा का अधिक सामना करना पड़ा है।

यदि हम भारतीय इतिहास पर दृष्टिपात करें तो हम पाते हैं कि भारतीय नारी ने परिवर्तनशील सामाजिक एवं सांस्कृतिक परिदृश्य पर अनेक उत्थान और पतन देखे हैं। कभी उसे देवी, लक्ष्मी जैसे शब्दों द्वारा सम्मानित किया गया तो कभी उसे उस सीमा तक नकारते हुए तिरस्कृत भी किया गया जहाँ उसका जीवन नारकीय स्थिति में ला दिया गया है।

हमारे यहाँ नारी को देवी का दर्जा तो दिया गया मगर उसके साथ मनुष्यता का व्यवहार कम ही किया गया। स्त्री की स्तुति के श्लोक व स्त्रोत तो बहुत लिखे गए, परंतु उसके शोषण, संघर्ष और उत्पीड़न की गाथाओं का चित्रण नहीं किया गया। उसके सौंदर्य पर काव्यों की रचना तो बहुत की गई परंतु उसकी पीड़ा का संगीत कम रचा गया। उसे शास्त्र सम्मत विदुषी कहकर अनुसुइया, मैत्रेयी व गार्गी के उदाहरण तो खूब दिए गए किंतु उसके निरक्षरता के अभिशाप को धोने का कोई सार्थक प्रयास नहीं किया गया। घर के अंदर उसे गृहणी और गृहलक्ष्मी के संबोधनों से संबोधित तो किया गया परंतु घर में ही दहेज में लक्ष्मी न लाने पर उसे जिंदा जलाने के अत्यंत अमानुषिक कार्य करने में कोई संकोच नहीं किया गया।

विषय को आगे बढ़ाते हुए यह बताना चाहूँगी कि चतुर्थ विश्व महिला सम्मेलन जो कि 1995 में बीजिंग में हुआ था, में यह कहा गया था कि महिलाओं के अधिकार मानव अधिकार है। महिलाओं के विरुद्ध सार्वजनिक एवं निजी जीवन में हिंसा के मामलों को मानव अधिकार के मामले माने जाएँगे। बीजिंग उद्घोषणा एवं कार्य योजना में घरेलू हिंसा को एक मानव अधिकार वाद बिंदु के रूप में स्वीकार किया गया था महिलाओं के अधिकारों को प्रभावशाली संरक्षण उपलब्ध कराने के लिए जो कि परिवार में किसी भी प्रकार की हिंसा की शिकार है घरेलू हिंसा से महिला संरक्षण अधिनियम, 2005 संसद द्वारा अधिनियमित किया गया तथा 26 अक्टूबर, 2006 से इसे लागू किया गया, इसमें कुल 37 धाराएँ हैं।

इस अधिनियम के प्राथमिक हितग्राही महिला एवं शिशु है। यह महिलाओं को उस व्यक्ति जिसके साथ घरेलू रिश्ता घटती है और जिसने उसे घरेलू हिंसा का शिकार बनाया है, के विरुद्ध मामला प्रस्तुत करने को सशक्त करता है। आपराधिक आचरणों के समस्त रूपों में घरेलू हिंसा सर्वाधिक प्रबल है, लेकिन उसी में सबसे कम शिकायत होती है।



घरेलू हिंसा एक गंभीरतम एवं सर्वाधिक मानव अधिकारों का उल्लंघन है। लम्बे समय से आज तक शायद न्याय व्यवस्था या उसकी कमी के कारण या न्याय व्यवस्थाओं में अपनों से बहिष्कृत किए जाने का डर पैदा करने वाली, आघात पहुँचाने वाली हानि होने के कारण महिलाएँ इसे अपने भाग्य के रूप में स्वीकारती आई हैं।

यह घरेलू हिंसा संबंधी क़ानून व्यापक विधि है और महिलाओं से संबंधित समस्त मुद्दों को संबोधित करती है। यह पहला अवसर है जब महिलाओं के उत्पीड़न संबंधी समस्त मुद्दों को ऐसे विस्तृत रूप में संबोधित करने के लिए विधि बनाई गई है।

पति या साथ रहने वाले भागीदार को भी जो घरेलू हिंसा के दोषी हो को एक वर्ष का कारावास या 20,000/- रुपए का अर्थदंड या दोनों से दंडित किया जा सकता है। इस अधिनियम के अधीन किए गए समस्त अपराध अजमानतीय हैं।

घरेलू हिंसा से पीड़ित महिला को पुलिस की सेवाओं का आश्रयगृहों और स्वास्थ्य स्थापनाओं से सेवाएँ लेने अधिकार है उसे इनके साथ ही स्वयं धारा 498 क भा.द.स. के अधीन परिवाद प्रस्तुत करने का भी अधिकार है। संरक्षण अधिकारी द्वारा अपने कर्तव्यों का उचित रूप से निर्वहन न किए जाने पर यह अधिनियम संरक्षण अधिकारी पर भी दंड का प्रावधान करता है।

यह विधि कार्यपालिक दंडाधिकारी के माध्यम से भी महिला के पति से 'व्यवहार के लिए या शांति बनाए रखने के लिए बंध पत्र निष्पादित किए जाने का प्रावधान करती है। कार्यपालिक दंडाधिकारी पति को घरेलू हिंसा न करने के लिए आदेशित कर सकता है और पति से प्रतिभूति जमा करने के लिए कहा जा सकता है और यदि वह क्रूरता का कृत्य जारी रखता है तो उन प्रतिभूमियों को जब्त किया जा सकता है। परिशांति कायम रखने के लिए और सदाचार के लिए और सदाचार के लिए प्रतिभूति संबंधी प्रावधान दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 106 से 123 तक में दिए गए हैं।

अब मूल प्रश्न यह उठता है कि महिलाओं के प्रति घरेलू हिंसा के लिए ज़िम्मेदार कौन है? क्या मात्र पुरुष वर्ग को ही दोषी ठहराकर अन्य परिस्थितियों को नज़रअंदाज कर सकते हैं और समस्या का समाधान हो जाएगा, लेकिन नहीं घरेलू हिंसा के लिए अन्य कारणों को नज़रअंदाज किया जाना हमारी भूल होगी। घरेलू हिंसा के लिए अन्य कारण भी ज़िम्मेदार हैं जो निम्नलिखित हैं।

**1. स्त्री का पराश्रिता व परावलंबी होना :** हमारे देश में बचपन से वृद्धावस्था तक नारी पराश्रिता व परावलंबी जीवन जीती है। उसका जीवन अनेक भय, आशंकाओं और हादसों के साये में गुजरता है। उसमें आत्मरक्षा तथा स्वालंबन का विकास न तो परिवार करता है और न समाज। यही कारण है कि वह अपने ऊपर होने वाले अपराधों को सहने के लिए विवश है।

**2. दोषपूर्ण तथा ढीली-ढाली प्रक्रिया :** हमारे देश की न्यायिक प्रक्रिया पूर्णतया साक्ष्यों पर निर्भर है, स्त्रियों के साथ घटने वाली घरेलू हिंसा में भी अपराधी साक्ष्यों के अभाव में दोषमुक्त

कर दिए जाते हैं इससे उनकी आपराधिक मनोवृत्ति को और अधिक अपराध करने का प्रोत्साहन मिलता है।

**3. स्त्री शिक्षा का अव्यावहारिक स्वरूप :** प्रायः यह तर्क भी दिया जाता है कि निरक्षरता स्त्रियों पर होने वाली घरेलू हिंसा का मुख्य कारण है, परंतु क्या इस बात का दावा किया जा सकता है कि शिक्षित व आत्म-निर्भर स्त्रियाँ पारिवारिक व सामाजिक उत्पीड़न का शिकार नहीं होती। मेरी अपनी राय है कि यदि सर्वे किया जाए तो शायद शिक्षित महिलाओं पर होने वाली घरेलू हिंसा का प्रतिशत अधिक होगा।

उपरोक्त कारणों पर विचार करने के बाद हम यह देखेंगे कि क्या अधिनियम उन उद्देश्यों पर खरा उतर रहा है जिनके लिए यह पारित किया गया था या इस अधिनियम में भी कुछ कमियाँ हैं, जिन्हें दूर करने की आवश्यकता है।

### **कमियाँ**

1. इस अधिनियम से पूर्व महिलाओं के अधिकारों को लेकर विभिन्न अधिनियम बनाए गए किंतु उनका निष्पादन आज तक सही तरीके से नहीं हो पा रहा है। अनेक कारणों में से कुछ कारण हैं जैसे सामाजिक चेतना की कमी, दहेज अपराध के विचारण में लंबी-चौड़ी प्रक्रिया का अपनाया जाना।
2. ऐसे विधायन लागू कराने में राजनीतिक इच्छा शक्ति का अभाव।
3. लोक सेवकों द्वारा पहल का अभाव तथा अपने दायित्व से बचते रहने का रवैया। प्रशासी तथा वित्तीय साधनों का अभाव/सामाजिक अंतरचेतना तथा सामुदायिक ग्राहता का अभाव।
4. निष्पादन अधिकारियों तथा विशेषकर पुलिसकर्मियों के प्रशिक्षण का न होना।
5. ऐसे क़ानून अधिनियमित तो किए गए हैं किंतु ऑचलिक सतह से जुड़े नहीं हैं केवल कागजी श्वेत-पत्रों तक सीमित हैं।
6. सरकारी तंत्रों तथा एजेंसी के मध्य समन्वय का अभाव अनभिज्ञता और निरक्षरता के कारण सामुदायिक चेतना का अभाव।
7. लोक सेवकों को इन विधियों को लागू करने में अपनी ईमानदारी और तत्परता बरतनी चाहिए तभी हम इन तमाम विधियों का लाभ महिलाओं तथा बच्चों को दिला सकेंगे जिनके लिए ये विधि बनाई गई है।
8. अपने देश में महिलाओं की सामाजिक स्थिति के सुधार करने के लिए क़ानून बनाए जाते हैं किंतु उनका क्रियान्वयन और उनकी समाज द्वारा स्वीकृति संतोषजनक नहीं रही।
9. महिलाओं को क़ानूनों का ज्ञान नहीं होता उनमें अनभिज्ञता, अज्ञानता और निरक्षरता के कारण सामुदायिक चेतना का अभाव होता है। अतः इस संबंध में महिलाओं को जागरूक बनाने की प्राथमिक आवश्यकता है तभी वे सामाजिक अत्याचारों से मुक्त हो पाएंगी।

## सुझाव

1. हमारे देश की परंपरा नारी को बहुत अधिक सम्मान देने की रही है। नारी को पुरुष का अर्धांग मानने वाली एकमात्र संस्कृति वाले देश में नारियों पर बढ़ती घरेलू हिंसा निश्चित ही चिंता एवं शर्म का विषय है। यद्यपि क़ानून बनाए गए हैं इन्हें दूर करने के लिए लेकिन सार्थक परिणाम सामने नहीं है। वस्तुतः यह एक ऐसी सामाजिक समस्या है जिसका निदान क़ानून बनाकर नहीं किया जा सकता, इसके लिए आवश्यक है पूरे समाज की मनोवृत्ति में परिवर्तन हो।
2. महिलाओं पर बढ़ती घरेलू हिंसा को दूर करने के लिए अपराधों के दोषी व्यक्तियों को सख्त सजा का प्रावधान होना चाहिए इन मामलों को निपटाने में आने वाली व्यवहारिक समस्या को दूर करने का प्रयास करना चाहिए।
3. एक सुस्पष्ट एवं सुविचारित महिला नीति का निर्माण किया जाना चाहिए जिसके अंतर्गत महिलाओं को आत्मनिर्भर, शिक्षित तथा जागरूक बनाने हेतु आवश्यक उपायों का समावेश किया जाना चाहिए।
4. प्रायः महिलाओं पर महिलाओं के साथ पारिवारिक उत्पीड़न करने तथा लड़कियों के साथ भेदभाव करने का आरोप लगाया जाता है, यह आरोप समस्त स्त्री जाति के लिए अत्यंत शर्म की बात है। जब तक वह स्वयं महिलाओं का सम्मान नहीं करेंगी तब तक उनकी सामाजिक स्थितियों में सुधार संभव नहीं है।
5. सामान्यतः लोग दूरदर्शन को देखने में अधिक रूचि लेते हैं अतः महिलाओं की दशा सुधारने संबंधी कार्यक्रम, पत्र-पत्रिकाओं, आकाशवाणी, दूरदर्शन के माध्यम से समाज की गतिविधियों में परिवर्तन लाया जाए।
6. केवल अधिनियम महिलाओं के विरुद्ध भेदभाव को समाप्त नहीं कर सकता है, भेदभाव समाप्त करने के लिए सभी व्यक्तियों को जितना शीघ्र संभव हो बचपन से ही महिलाओं के प्रति व्यवहार एवं दृष्टिकोण को बदलना चाहिए।
7. आवश्यकता इस बात की है कि महिला साक्षरता में वृद्धि की जाए। महिलाओं के विरुद्ध हिंसा समाप्त करने के क़ानूनी संरक्षण के साथ-साथ सामाजिक चेतना जागृत की जाए। क़ानूनी अधिकारों की जानकारी प्रदान कर महिलाओं के मानव अधिकार सुनिश्चित करना और समानता का अधिकार प्राप्त करने की दिशा में समाज का रचनात्मक योगदान प्राप्त किया जाए। बालिकाओं के प्रति भेदभाव तथा दुर्व्यवहार को समाप्त करने के लिए स्वयं महिलाओं को आगे आना होगा।
8. आर्थिक क्षेत्र में रोजगार प्रशिक्षण एवं संसाधन उपलब्ध कराकर महिलाओं को आत्मनिर्भर बनाया जा सकता है। इन सब के बावजूद सबसे अधिक ज़िम्मेदारी स्वयं महिलाओं की है कि अपने-अपने स्तर पर सभी माताएँ लड़के-लड़की के बीच भेदभाव कम करें, हर महिला एक दूसरी पिछड़ी महिला को सामाजिक रूप से जागरूक एवं शिक्षित करें और

प्रतिद्वंद्विता में आकर नारी ही नारी की दुश्मन न बने तो आगे चलकर समस्या का समाधान मिल सकता है, क्योंकि सदियों से कुठित महिला रुढ़िग्रस्त हो गई है, उसके अंतर्मन में जब तक महिला के प्रति प्रगतिशील धारणा नहीं बनती तब तक महिला की सामाजिक आर्थिक स्थिति में सुधार की संभावना नहीं होगी।

9. जहाँ शिक्षा का अभाव रहेगा वहाँ अज्ञान का अँधेरा छाया रहेगा। भारत में जितनी महिलाएँ शिक्षित हैं यदि वे पूर्ण प्रयास करें तो निश्चित ही काया-कल्प कर सकती हैं।
10. नारी की सामाजिक स्थिति को सुधारने तथा उसे भयमुक्त तथा शोषण मुक्त जीवन प्रदान करने के लिए आवश्यक है, एक ऐसे स्त्री उन्मुक्त राष्ट्रीय कार्यक्रम की जिसके अंतर्गत सही अर्थों में नारी के प्रगति के प्रयास हो। एक बालिका युवती, किशोरी, तथा वृद्धा के रूप में वह कैसे पारिवारिक व सामाजिक उत्पीड़न से मुक्त हो इसकी रूप रेखा बनाई जाएँ। हमें नारी के लिए इसकी समस्याओं और पीड़ाओं से संदर्भित शिक्षा व्यवस्था तैयार करनी होगी और अक्षर सिखाकर साक्षर बनाने वाली शिक्षा नारी के लिए उतनी आवश्यक नहीं है उसे निरकुंशता व अन्याय के विरुद्ध न्याय की लड़ाई लड़ने की शिक्षा देना। नारी को संघर्ष के साक्षरता की आवश्यकता है। उसे स्वाभिमान की वर्णमाला की आवश्यकता है, उसे आत्मावलंबन एवं साहस की शब्दावली की आवश्यकता है तभी वह अपने लिए समाज में एक सम्मानीय स्थान बना सकती है और राष्ट्र विकास में अपना सक्रिय योगदान दे सकती है।

इस प्रकार कहा जा सकता है कि भारत में नारी स्थिति अत्यंत विरोधाभासी रही है। एक तरफ तो नारी को समाज में परंपरा से शक्ति के रूप माना गया है तो दूसरी तरफ उसे अबला की संज्ञा भी दी गई है। इस अतिवादी व्यवस्था ने नारी के विकास में बाधा उत्पन्न की है। नारी को हमेशा पुरुष प्रधान समाज द्वारा छला जाता रहा है, परंतु नारी के दूसरे पहलू को देखे तो बड़ी तस्वीर सामने आती है इस दयनीय स्थिति की ज़िम्मेदारी पुरुष के साथ-साथ स्वयं नारी की भी है। आज समाज दहेज प्रथा, घरेलू हिंसा, लड़कियों को जन्म से पूर्व मार देने जैसी समस्याओं से ग्रसित है जिसमें कहीं न कहीं उसका भी दोष है। अतः नारी शिक्षित एवं जागरूक हो तो इन कुरीतियों को रोका जा सकता है।

□

### संदर्भ

1. डॉ. एच.ओ. अग्रवाल, मानव अधिकार
2. डॉ. आर.पी. तिवारी एवं भारतीय नारी : वर्ग समस्या और डॉ. डी.पी. शुक्ला, भाव समाधान
3. एस.के. वाधवा, घरेलू हिंसा एवं यौन उत्पीड़न से
4. विभिन्न पत्र-पत्रिकाएँ महिलाओं का संरक्षण क़ानून

## विधि, न्याय तथा न्यायिक प्रक्रिया

**मुख्य विचारणीय तथ्य :** भारत में विधि के शासन की अवधारणा में लोकतांत्रिक शासन प्रणाली के परिप्रेक्ष्य में विधि, न्याय तथा न्यायिक प्रक्रिया का समालोचनात्मक परीक्षण किया जा रहा है।

**शब्द कुँजी :** न्याय, न्यायिक प्रक्रिया, उद्देश्यपूर्ण निर्वचन

### प्रविधि

उपरोक्त परीक्षण के लिए यह आवश्यक है कि निम्न पद्धति का अनुसरण किया जाए।

1. भारतीय संविधान में निहित संवैधानिक आदर्शों तथा न्याय निर्णयन प्रक्रिया का अध्ययन।
2. विधायी सिद्धांतों का उद्देश्यपूर्ण निर्वचन।

भारतीय न्यायिक व्यवस्था में अनेक ऐसे निर्णीत वाद हैं जिनका अध्ययन करने पर हमें यह अनुभव होता है कि निर्णय तो न्यायिक प्रक्रिया के अनुसरण में हुआ है परंतु निर्णय की प्रकृति को देखने से यह अनुभव होता है कि पक्षकारों के द्वारा न्याय अनुभव नहीं किया गया। न्याय का मुख्य उद्देश्य न्यायिक प्रक्रिया का अनुसरण करते हुए पक्षकारों को राहत प्रदान करना है किसी भी राष्ट्र की अर्थ व्यवस्था उस राष्ट्र की न्याय व्यवस्था पर पारस्परिक रूप से निर्भर करती है यहाँ हमने निम्न वाद विधियों में अध्ययन कर यह पाया है कि निम्न वादों में न्यायिक प्रक्रिया पर पक्षकारों का विश्वास अस्थिर हुआ है।

### वादविधि

1. निम्न वादों में विधि की अपेक्षा के अनुरूप कार्य करते हुए निर्णय दिए गए परंतु न्याय नहीं हुआ।
    - निहाल सिंह विरुद्ध रामबाई, ए.आई.आर. 1987 मध्य प्रदेश 126
- महिला की बिक्री को संविधान के अनुच्छेद 23 का उल्लंघन मानते हुए माननीय न्यायालय ने इस वाद में जन जागरुकता को बढ़ाना अत्यावश्यक मानते हुए लॉ कमीशन नई दिल्ली, लॉ कमीशन भोपाल, सचिव विधि विभाग भारत सरकार, नई दिल्ली, सचिव विधि विभाग मध्य प्रदेश शासन, भोपाल, सचिव विधिक सहायता प्राधिकरण, मध्य प्रदेश, भोपाल को समुचित दिशा निर्देश जारी किए हैं।

- प्रेम विरुद्ध मुश्ताक, ए.आई.आर. 1987, गुजरात, 106
- प्रेस ट्रस्ट इंडिया कापोरेशन विरुद्ध यू.पी.एस.ई.बी., ए.आई.आर. 1988, एस.सी. 2035

उपरोक्त दोनों वादों में भी न्यायिक प्रक्रिया का पालन तो हुआ परंतु पक्षकारों को न्याय प्राप्त हुआ हो ऐसा विश्वास उत्पन्न नहीं हो पाया।

2. निम्न वादों में न्याय दान उद्देश्यपूर्ण निर्वचन के द्वारा प्रदत्त किया गया।
  - मुमताज बेगम विरुद्ध मुबारक हुसैन, ए.आई.आर.1986 मध्य प्रदेश, 221 (4-वर्षीय बालक की सुपर्दगी माँ को अनुच्छेद 226 भारत के संविधान के द्वारा की गई)
  - मेहमूद नैयर आजम विरुद्ध छत्तीसगढ़ राज्य, ए.आई.आर. 2012 (वादी को मानव अधिकारों के अतिलंघन के बारे में लोकविधि उपचार का अनुतोष प्रदत्त करते हुए 2 लाख रुपए प्रतिकर)
  - सावित्री विरुद्ध गोविंद सिंह, ए.आई.आर. 1985, एस.सी. 984 (धारा 145 सी.आर.पी.सी. के उद्देश्यपूर्ण निर्वचन के द्वारा अंतरिम अनुतोष दिलवाया गया)

#### उद्देश्यपूर्ण न्यायिक निर्वचन का महत्त्व

1. यह सत्य है कि भारतीय संविधान में विधायी कृत्यों का निर्वहन लोकतांत्रिक रीति से चुनी हुई बहुमत दल की सरकार द्वारा किया जाता है परंतु इस विधायी कृत्य का न्यायपूर्ण निर्वचन न्यायपालिका पर गंभीर उत्तरदायित्व अभिनिर्धारित करता है।
2. विधि का मुख्य उद्देश्य न्यायिक रीति से सामाजिक, आर्थिक एवं राजनैतिक व्यवस्था को बनाए रखना है। न्यायिक निर्वचन इसमें निरंतर महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वहन कर रहा है।

#### संवैधानिक मापदंड

1. भारतीय संविधान की प्रस्तावना संविधान के निर्माताओं के मस्तिष्क को जानने की न सिर्फ कुँजी है वरन् विभिन्न विधियों में उपबंधित प्रावधानों को निर्देशित करने का मार्गदर्शक भी है।
  - बेरूबेरी वाद, ए.आई.आर. 1960, एस.सी. 845
  - केशवानंद भारती का वाद, ए.आई.आर. 1983, एस.सी. 1481
2. भारतीय संविधान के अंतर्गत अनुच्छेद 14 से लेकर 32 तक गारंटीकृत मौलिक अधिकार।
3. राज्य के नीति निर्देशक तत्व जो कि देश की नीतियों के संचालन हेतु मूलभूत तत्व हैं।

#### उद्देश्यपूर्ण निर्वचन की वर्तमान आवश्यकता

विगत कुछ दिनों से निर्भया वाद के अभियुक्तों द्वारा जिस प्रकार से क्षमा याचिकाओं के उपबंधों का दुरुपयोग कर सजा को निरंतर टाला जाता रहा, ऐसी परिस्थिति में न्यायिक पद्धति

में विश्वास को जागृत करने के लिए आज त्वरित न्याय की अवधारणा को बल देना अत्यंत आवश्यक है। यह अत्यंत दुर्भाग्यपूर्ण स्थिति है कि हैदराबाद में हुए एक लोमहर्षक बलात्कार और हत्याकांड के आरोपियों को जो कि सुस्थापित न्यायिक पद्धति के द्वारा बिना विचारे ही अभियुक्त मान लिए गए तथा पुलिस एनकाउंटर में मारे गए। इस घटना का सबसे चौकन्ना करने वाला पहलू यह है कि पुलिस की इस कार्यवाही का जनमानस द्वारा उत्साहपूर्ण समर्थन किया गया जिसने इस यक्ष प्रश्न को जन्म दिया है कि भारत में सुस्थापित न्यायिक प्रक्रिया के द्वारा दिए जाने वाले न्याय दान में क्या आमजन का विश्वास उसी दृढ़ता से बना हुआ है? इस प्रश्न के नकारात्मक उत्तर की कल्पना मात्र से लोकतांत्रिक व्यवस्था के मूलभूत सिद्धांतों की जड़े हिल जाती हैं।

निर्भया कांड के संदर्भ में पुनः विचारणीय प्रश्न यह है कि इस घटना में सम्मिलित नाबालिक आरोपी जिसके द्वारा मृत पीड़िता से सर्वाधिक क्रूरता की गई, को मात्र किशोरवयता के कारण अवयस्कता का लाभ देते हुए पूरी तरह से उसके द्वारा कारित घृणित एवं जघन्य कृत्य से सरलता से निकाल दिए जाने देना कहाँ तक उचित है। यह सत्य है कि विशेष विधि सामान्य विधि पर अधिभावी होती है परंतु भारतीय दंड संहिता के सामान्य अपवाद खंड में 7 से 12 वर्ष की आयु वर्ग के बालकों के द्वारा किए गए उन अपराधों को जिनकी प्रकृति और परिणाम को समझने में वे सक्षम हैं, को आपराधिक दायित्व से मुक्ति प्रदान नहीं की गई है। इस उपरोक्त वाद में न्यायिक निर्वचन के अर्थपूर्ण निर्वचन की महती आवश्यकता थी कि कोई भी किशोर कैसा भी घृणिततम अपराध करके बच न निकल सके।

लॉर्ड हेल्सबेरी के शब्दों में न्यायिक निर्वचन का मूल उद्देश्य न्याय के अर्थपूर्ण उद्देश्यों की मूल प्राप्ति से है न कि मात्र उसके विधिक निर्वचन से।

इस प्रकार निष्कर्ष रूप से हम कह सकते हैं कि मात्र न्यायिक प्रक्रिया का पालन ही नहीं होना चाहिए वरन् पक्षकारों को न्यायिक व्यवस्था से प्रभाव पूर्ण उपचार एवं उनका विश्वास भी स्थापित होना चाहिए।

### **निष्कर्ष**

भारतीय लोकतांत्रिक व्यवस्था के सर्वाधिक सृष्टि स्तंभ के रूप में न्यायपालिका द्वारा निरंतर अपनी भूमिका का श्रेष्ठतम दायित्व निर्वहन किया जाता रहा है। परंतु न्याय एवं न्यायिक प्रक्रिया के प्रति जनचेतना में कोई भी नकारात्मकता अंततः संपूर्ण व्यवस्था को ही भ्रष्ट करने की क्षमता रखती है। यह कथन सत्य है कि न्यायिक निर्वचन सदैव संदेह का लाभ देते हुए आरोपी के हित में किया जाता रहा है, कि चाहे 100 अपराधी छूट जाएँ परंतु एक निर्दोष व्यक्ति को सजा न हो परंतु पीड़ित के साथ उसका समस्त परिवार, समाज तथा संपूर्ण देश जिस पीड़ा से गुजरता है उसके परिप्रेक्ष्य में त्वरित न्याय दान की प्रक्रिया हेतु तथा दांडिक न्याय प्रशासन की मजबूती हेतु उद्देश्यपूर्ण न्यायिक निर्वचन की सर्वाधिक आवश्यकता वर्तमान में है।

□

डॉ. शीतल प्रसाद मीना

## कोरोना महामारी : भारत में विधिक प्रावधान

कोविद-19 एक मनुष्य द्वारा दूसरे मनुष्य में कोरोना वायरस के संक्रमण के कारण होने वाली महामारी चीन के वुहान प्रांत से आज विश्व के सभी देशों में फैल चुकी है। विश्व की महाशक्तियाँ अमेरिकी, स्पेन फ्रांस, स्पेन, इटली, जर्मनी, ब्रिटेन आदि देशों में लाखों की संख्या में लोग इस वायरस से संक्रमित हैं तथा हजारों की संख्या में मौतें हुई हैं। भारत में भी दिल्ली स्थित तबलीकी मरकज के जमात के लोगों के द्वारा पूरे भारत के राज्यों में इस महामारी से हजारों की संख्या में लोग संक्रमित हुए हैं और इसमें विदेशी भी शामिल थे। इन लोगों में से कुछ लोगों के द्वारा डॉक्टरों व नर्सों के साथ दुर्व्यवहार की शिकायतें भी आई हैं। इनके खिलाफ भारतीय दंड संहिता की विभिन्न धाराओं में मामले दर्ज किए गए हैं। महामारियों की रोकथाम व उपचार के संबंध में भारत में विभिन्न क़ानून बने हुए हैं -- महामारी अधिनियम, 1897, भारतीय दंड संहिता, राष्ट्रीय सुरक्षा क़ानून, दंड प्रक्रिया संहिता, भारत का संविधान, राष्ट्रीय आपदा प्रबंधन अधिनियम, 2005, दिव्यांगजन्य अधिकार अधिनियम, 2016 आदि। विश्व के कई देशों में लॉकडाउन किया गया। भारत में भी प्रधानमंत्री श्री नरेंद्र मोदी ने लॉकडाउन की घोषणा की। उसके बाद राष्ट्रीय व अंतर्राष्ट्रीय उड़ानें रद्द की गईं। रेल परिवहन आदि पूर्ण रूप से बंद कर दिए। कई स्वयंसेवी संगठनों ने सेवा-भाव से भोजन, पानी आदि की व्यवस्था की जो एक सराहनीय कार्य था। सभी कर्मचारियों व दान दाताओं ने प्रधानमंत्री कल्याण कोष में आर्थिक योगदान दिया। उच्चतम न्यायलय ने ऐसे समय में विडियो कांफ्रेंसिंग के जरिए सनुवाई के निर्देश दिए। इस महामारी के संक्रमण को फैलने से रोकने का एक ही तरीका सरकार के द्वारा बताया गया कि घर पर रहें, सुरक्षित रहें।

भारत सहित विश्व के सभी देशों में कोरोना नामक महामारी फैलती जा रही है। इस महामारी से मानव जाति को बचाने के लिए सरकारें/डॉक्टर इसमें लगे हुए हैं। लेकिन इसका अभी तक कोई इलाज नहीं है। चीन के वुहान प्रांत से फैली इस बीमारी ने पूरे देशों को चपेट में ले लिया है। कोरोना नामक वायरस ने किसी को भी नहीं बख़्शा। जो भी व्यक्ति संक्रमित व्यक्ति के संपर्क में आया वो इसका शिकार हो गया। चीन में काफ़ी संख्या में लोग इस बीमारी से मर गए। चीन के बाद इटली, स्पेन, ईरान, भारत आदि देशों में इस वायरस का संक्रमण फैलता जा रहा है। अमेरिका, ब्रिटेन जैसे विकसित देश भी हजारों की संख्या में लोग वायरस की चपेट में आने से संक्रमित



हो रहे हैं जिसके कारण वहाँ रोज हज़ारों की संख्या में लोग मर रहे हैं। इस महामारी को रोकने के लिए सरकारों ने लॉकडाउन तक कर दिया है। भारत में भी सर्वप्रथम राजस्थान में राज्य सरकार ने पूरे राज्य में लॉकडाउन किया। उसके बाद, 26 मार्च को भारत के प्रधानमंत्री श्री नरेंद्र मोदी ने पूरे देश में लॉकडाउन की घोषणा की जो 14 अप्रैल, 2020 तक था।<sup>1</sup>

महामारी अधिनियम, 1897

इस अधिनियम का उद्देश्य खतरनाक महामारियों की रोकथाम करना है। भारत के गुजरात में कोलरा फैलने पर 2018 में इस क़ानून को लागू किया गया था। पुणे में भी स्वाइन फ़्लू पर इस अधिनियम को लागू किया था।<sup>2</sup>

**राज्य सरकार की नियम बनाने की शक्ति :** खतरनाक महामारियों की रोकथाम के उपाय हेतु राज्य सरकार निर्देश दे सकती है। राज्य सरकार का यह समाधान हो जाए कि उसके किसी भाग में खतरनाक महामारी का प्रकोप हो गया है या उस महामारी फैलने की संभावना है तो वह आवश्यक कदम उठाएगी। इसके लिए राज्य सरकार सार्वजनिक सूचना के द्वारा विनियम बना सकती है। रोकथाम हेतु आवश्यक समझे तो व्यय के इस संबंध में नियम बना सकेगी।<sup>3</sup>

महामारी अधिनियम के अनुसार, राज्य सरकार द्वारा किसी व्यक्ति ने रेल या कार या अन्य किसी वाहन से यात्रा की है, तो राज्य सरकार उनका निरीक्षण कर सकती है। यदि सरकार के अधिकारी को यह शंका है कि वह किसी रोग से संक्रमित हैं तो उनको अस्पताल या अस्थायी आवास में रखा जा सकता है। देश में सभी राज्यों के द्वारा चिकित्सकों की टीमों के द्वारा दिन-रात इस महामारी के रोकथाम के प्रयास किए जा रहे हैं।

अधिनियम की धारा 2-क में केंद्र सरकार को यह शक्ति प्रदान की गई है कि भारत या उसके किसी भाग में महामारी का प्रकोप या आशंका है कि वह फैल सकती है तो वह उपाय हेतु जलयान या पोत में यात्रा करने वाले व्यक्तियों का निरीक्षण कर सकती है। इस अधिनियम की धारा 3 में यह प्रावधान है कि यदि कोई व्यक्ति इस अधिनियम के अधीन किसी विनियमन या आदेश का उल्लंघन करता है, तो उसे भारतीय दंड संहिता, 1860 की धारा 188 के तहत दंडित किया जा सकता है।<sup>3</sup>

**एपेडिमिक और पेंडेमिक का अर्थ एवं इनके बीच अंतर :** विश्व स्वास्थ्य संगठन के द्वारा कोरोना को महामारी घोषित कर दिया है। महामारी की परिभाषा महामारी अधिनियम में नहीं दी गई है। पैनेडेमिक यानि महामारी का नाम उस बीमारी को दिया जाता है जो एक ही समय में दुनियाँ के अलग-अलग देशों में तेजी से फैल रही हो। कोरोना वायरस महामारी का रूप ले लेगा इसका सही अंदाजा विश्व स्वास्थ्य संगठन को भी नहीं था इसलिए पहले एपेडिमिक माना गया था। वैसे तो एपेडिमिक का अर्थ भी महामारी होता है लेकिन यह एक क्षेत्र विशेष तक ही सीमित होती है जब दुनियाँ के कई देश किसी एक बीमारी या वायरस से प्रभावित हो जाएँ तो उसे पेनेडेमिक कहा जाता है।<sup>4</sup>

### भारतीय दंड संहिता, 1860

भारतीय दंड संहिता, 1860 की धारा 269 और 270 व धारा 188 के अधीन संक्रमण को फैलाना दंडनीय अपराध है। धारा 188 के अंतर्गत किसी लोक सेवक के द्वारा विधिपूर्ण ढंग से जारी की गई आज्ञा की अवज्ञा से उत्पन्न होने के अपराध के निम्नलिखित तत्व हैं -- आदेश किसी लोक सेवक द्वारा विधिपूर्ण ढंग से जारी किया गया हो, ऐसा आदेश वैध हो, आज्ञा जारी करने वाला लोक सेवक ऐसी आज्ञा जारी करने के लिए विधिपूर्ण ढंग से सक्षम हो, अभियुक्त को आदेश का वास्तविक रूप से ज्ञान हो, अभियुक्त द्वारा ऐसी अवज्ञा की गई हो, ऐसी अवज्ञा के परिणामस्वरूप किसी व्यक्ति को क्षोभ, मानव-जीवन या स्वास्थ्य को खतरा, दंगा या बलवा कारित हो, या कारित होने की आशंका हो। एक वाद जिसमें यह निर्धारित किया कि अभियुक्त को उस आदेश का ज्ञान होना आवश्यक है, जिसकी अवज्ञा करने का उस पर आरोप है। केवल आदेश की उद्घोषणा करने वाली सामान्य अधिसूचना का प्रमाण इस धारा की अपेक्षाओं को पूरा नहीं करता। फिर उद्घोषणा का समाचार-पत्रों में प्रकाशित होना भी आवश्यक नहीं है।<sup>5</sup> जैसा कि निजामुद्दीन के मरकज में आयोजकों को लॉकडाउन का ध्यान में होने के बावजूद भीड़ वहाँ उपस्थित थी। जो कोई विधि-विरुद्ध रूप से या उपेक्षा से ऐसा कोई कार्य करेगा जिससे कि वह विश्वास करने का कारण रखता हो कि जीवन के लिए संकटपूर्ण किसी रोग का संक्रमण या फैलना संभाव्य है, वह दोनों में से किसी भाँति के कारावास, जिसकी अवधि 6 मास तक हो सकेगी या जुर्माने से दंडित किया जाएगा।<sup>7</sup> जो कोई परिद्वेष से ऐसा कोई कार्य करेगा जिससे कि वह जानता या विश्वास करने का कारण रखता हो कि जीवन के लिए संकटपूर्ण किसी रोग का फैलना संभाव्य है, वह दोनों में से किसी भाँति के कारावास से, जिसकी अवधि दो वर्ष तक हो सकेगी या जुर्माने से या दोनों से दंडित किया जाएगा।<sup>8</sup>

### दंड प्रक्रिया संहिता, 1973

दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 की धारा 144 जिला मजिस्ट्रेट द्वारा क्षेत्र में लगाई जा सकती है जिसके द्वारा जिला मजिस्ट्रेट पाँच या इससे ज्यादा लोगों के इकट्ठा होने पर रोक लगा सकती है। आदेश न मानने पर पुलिस संहिता की धारा 154 में एफ.आई.आर. दर्ज कर सकती है।

### राष्ट्रीय सुरक्षा कानून

यह कानून 23 सितंबर, 1980 को बना। यह कानून केंद्र व राज्य सरकारों को अधिक शक्ति प्रदान करता है। यदि कोई व्यक्ति राष्ट्र की सुरक्षा में लगे व्यक्तियों को रोक रहा है, बाधा पहुँचाता है तो उसे उस संदिग्ध व्यक्ति को बिना किसी आरोप के 12 महीने जेल में रखा जा सकता है। हिरासत में लिए गए व्यक्ति को आरोप तय किए बिना हिरासत में रखा जा सकता है उसके बाद वह उच्च न्यायालय के सलाहकार बोर्ड के समक्ष अपील कर सकता है कोई वकील पैरवी नहीं कर सकता है। भारत में कई राज्यों में डॉक्टरों पर हमला करने वालों व नर्सों से अश्लील हरकत करने वालों पर रासुका के तहत कार्यवाही की गई है।

**मॉर्शल लॉ :** इस क़ानून के तहत पूरे देश में केंद्र सरकार द्वारा मॉर्शल लॉ लगाया जा सकता है।

राष्ट्रीय आपदा प्रबंधन अधिनियम, 2005

केंद्र सरकार देश के सामने आपदा आने पर इस अधिनियम के तहत राष्ट्रीय आपदा प्रबंधन प्राधिकरण का गठन कर सकती है जिसका अध्यक्ष प्रधानमंत्री होता है। इस अधिनियम के तहत केंद्र सरकार राज्यों को दिशा-निर्देश जारी कर सकती है। इस अधिनियम के प्रावधानों का उल्लंघन करने पर राज्य के अधिकारियों के साथ निजी कंपनियों के कर्मचारियों पर भी कार्यवाही कर सकती है। केंद्र सरकार द्वारा कोरोना महामारी की रोकथाम हेतु 21 दिनों के लॉकडाउन के लिए इस अधिनियम को लागू कर दिया। आपदा प्रबंधन अधिनियम, 2005 के तहत अपराध पर धारा 51 से 60 तक धाराओं के तहत सजा या जुर्माने का प्रावधान किया गया है --

1. धारा 51	बाधा डालना	1 साल की कैद या जुर्माना/जानमाल के नुकसान पर 2 साल की कैद या जुर्माना
2. धारा 52	मिथ्या दावे	2 साल की कैद या जुर्माना
3. धारा 53	धन या सामग्री का दुरुपयोग	2 साल की कैद या जुर्माना
4. धारा 54	मिथ्या चेतावनी	1 साल की कैद या जुर्माना
5. धारा 55		सरकारों के द्वारा अपराध नहीं
6. धारा 56	अधिकारी के कर्तव्य पालन में असफलता पर	1 साल की कैद या जुर्माना
7. धारा 57	आदेश के उल्लंघन पर	1 साल की कैद या जुर्माना

#### **सूचना प्रौद्योगिकी अधिनियम, 2000**

यदि कोई कोरोना महामारी से संबंधित सोशल मीडिया पर गलत अफवाह एवं भ्रूँति फैलाता है तो उस व्यक्ति के विरुद्ध सूचना प्रौद्योगिकी अधिनियम के तहत क़ानूनी कार्यवाही की जा सकती है।

**आयकर अधिनियम :** आयकर अधिनियम की धारा 80-जी के अंतर्गत प्रधानमंत्री राहत कोष या मुख्यमंत्री राहत कोष में दान करने पर कर की छूट प्राप्त होगी। हाल ही में केंद्र व राज्य सरकारों के द्वारा कोविद-19 नाम से राहत कोष का निर्माण किया है जिसमें कोई भी व्यक्ति कोविद-19 से पीड़ित लोगों की मदद कर सकता है।

#### **दिव्यांगजन अधिकार अधिनियम, 2016**

**क्या कोरोना जैसी महामारियों के समय दिव्यांगजनों को संरक्षण और सुरक्षा का अधिकार है?**

दिव्यांगजन अधिकार अधिनियम, 2016 में दिव्यांगजनों को संरक्षण और सुरक्षा का अधिकार

दिया गया है। यह प्रावधान किया गया है कि मानवीय आपात स्थिति, प्राकृतिक आपदा और सशस्त्र संघर्ष की स्थिति में समान संरक्षण और सुरक्षा प्राप्त होगी।<sup>9</sup> राष्ट्रीय आपदा प्रबंधन अधिनियम, 2005 के तहत धारा 2(ड) के तहत परिभाषित दिव्यांगजनों को प्रत्येक समुचित सरकार दिव्यांगजनों की समुचित सुरक्षा के उपाय करेंगे। राष्ट्रीय आपदा प्रबंधन अधिनियम, 2005 की धारा 25 के तहत गठित जिला आपदा प्रबंध प्राधिकरण जिले में दिव्यांगजनों का ब्योरा रखेगा जिससे जोखिम की स्थिति में उनको सूचना दी जा सके। जिसका राज्य आयुक्त कार्यकलापों का जिम्मा लेंगे।<sup>9</sup>

**महामारी अधिनियम, 1897 बनाम स्वास्थ्य का अधिकार अंतर्राष्ट्रीय परिप्रेक्ष्य :** जहाँ एक ओर कोरोना जैसी गंभीर महामारी से विश्व के सामने गंभीर चुनौती बनी हुई है, यह एक लाइलाज बीमारी है जिसकी कोई दवाई अभी किसी भी देश के पास नहीं है, दूसरी ओर प्रत्येक व्यक्ति को स्वास्थ्य का अधिकार है। मानव अधिकार के साथ मूल अधिकार है। ऐसे में राज्यों के समक्ष यह चुनौती है कि कोरोना जैसी महामारी के कारण विश्व के सभी देशों की जिम्मेदारी है कि मानव जाति को इस महामारी से बचाएँ और इस संबंध में सभी देशों की सरकारें कार्य कर रही हैं।

स्वास्थ्य को मानव अधिकार के रूप में संयुक्त राष्ट्र संघ ने मान्यता दी है। संयुक्त राष्ट्र संघ ने मानव अधिकार की सार्वभौमिक घोषणा को 10 अप्रैल, 1948<sup>11</sup> को लागू किया था जिसके अंतर्गत प्रत्येक व्यक्ति की राज्य के द्वारा स्वास्थ्य की देखभाल करना राज्यों का कार्य है। यहाँ राज्य से तात्पर्य देशों से है। जीवन स्तर बनाए रखने के लिए खाना, कपड़ा, मकान, चिकित्सा संबंधी सुविधाएँ और आवश्यक सामाजिक सेवाएँ राज्य के द्वारा उपलब्ध कराई जाएगी अर्थात् इस महामारी से उपचार हेतु सभी देशों का ऐसे समय में महामारी से संक्रमित व्यक्तियों की देखभाल एवं समुचित उपचार का दायित्व होगा। इसी संबंध में सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक अधिकार संबंधी अंतर्राष्ट्रीय प्रसंविदा के अंतर्गत “प्रत्येक व्यक्ति को शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्य के उच्चतम प्राप्त स्तर का उपयोग करने का अधिकार है।”<sup>12</sup>

### **भारत के संविधान में स्वास्थ्य का अधिकार**

वस्तुतः जीवन की सार्थकता स्वास्थ्य में ही है। स्वास्थ्य जीवन की एक अमूल्य निधि है और इसकी सुरक्षा करना हमारा परम कर्तव्य है। जीवन की इस संचित निधि को सुरक्षित रखने के लिए स्वच्छता की और ध्यान देना अत्यंत आवश्यक है। हमारे आस-पास कोरोना वायरस संक्रमण द्वारा फैल सकता है। अतः व्यक्ति स्वयं सामाजिक दूरी बनाए तभी इस महामारी से बचा जा सकता है। प्रसिद्ध विधिशास्त्री लाक के अनुसार, ‘स्वस्थ मस्तिष्क स्वस्थ शरीर में ही रह सकता है। इस महामारी की रोकथाम तभी हो सकती है जब व्यक्ति स्वच्छता रखेगा। स्वास्थ्य से अभिप्राय है कि स्थानीय समुदाय स्वास्थ्यपूर्ण वातावरण में रहे। समुदाय व्यक्तियों के समूह से बनता है और व्यक्ति समाज की एक इकाई है। समुदाय का विकास तब ही संभव है जब व्यक्ति का स्वास्थ्य

अच्छा है। स्वच्छता स्वास्थ्य को संरक्षित रखने का विज्ञान है इसमें वे सभी क्षेत्र सम्मिलित हैं जो वातावरण को स्वस्थ बनाए रखने में सहायक हैं। इस हेतु स्थानीय क्षेत्र के सार्वजनिक स्थानों की स्वच्छता एवं प्राकृतिक सौंदर्य की समझ का विकसित होना आवश्यक है।

भारतीय संविधान में प्रत्येक व्यक्ति को मूल अधिकार प्रदान किए गए हैं। मूल अधिकारों के अलावा राज्य के नीति-निर्देशक तत्वों में भी राज्य की जिम्मेदारी मानी गई है कि राज्य नीति निर्धारण के माध्यम से सभी को स्वच्छ जल एवं वायु प्राप्त हो। महामारी के समय शुद्ध भोजन सभी को प्राप्त हो। संविधान के अनुच्छेद-21 में प्राण एवं दैहिक स्वतंत्रता का मूल अधिकार दिया गया है जिसको उच्चतम न्यायालय ने अपने न्यायिक निर्णयों में स्वास्थ्य के अधिकार को मूल अधिकार माना है।<sup>13</sup>

**स्वास्थ्य तथा चिकित्सा सुविधा पाने वाले कर्मकारों का अधिकार :** कोरोना जैसी महामारियों के समय स्वास्थ्य तथा चिकित्सा सहायता प्राप्त करना व्यक्ति का मूल अधिकार है। उच्चतम न्यायालय ने एक वाद में यह निर्णय दिया है कि अनुच्छेद-21 के अंतर्गत स्वास्थ्य तथा चिकित्सा सहायता प्राप्त करना एक मूल अधिकार है क्योंकि यह उसके जीवन को अर्थपूर्ण बनाता है जो व्यक्ति की गरिमा बनाए रखने के लिए आवश्यक है।<sup>14</sup> एक अन्य वाद के मामले में उच्चतम न्यायालय का यह निर्णय है कि अनुच्छेद-21 के अंतर्गत एक कर्मकार को स्वास्थ्य का अधिकार एक मूल अधिकार है।<sup>15</sup>

राजस्थान में हाल ही में कुछ ऐसे मामले समाने आए हैं जिसमें कोराना महामारी से जुड़े मेडिकल सेवा से जुड़े डॉक्टर, नर्स व कर्मचारियों से इस महामारी के समय मकान खाली करने को कहा गया इस पर राज्य सरकार ने मकान मालिकों को दिशा-निर्देश जारी किए कि इस समय किसी से मकान खाली नहीं कराया जाएगा अन्यथा ऐसे मकान मालिकों के साथ कानूनी कार्यवाही की जाएगी।

**चिकित्सा सहायता पाने का अधिकार :** ऐसी महामारी को रोकना या संक्रमित व्यक्तियों को सहायता प्रदान करना राज्य का प्राथमिक कर्तव्य है। अनुच्छेद-21 राज्य पर यह कर्तव्य आरोपित करता है कि वह प्रत्येक व्यक्ति के जीवन की रक्षा करे। राज्य द्वारा संचालित सरकारी अस्पतालों में कार्यरत चिकित्सकों का यह कर्तव्य है कि वे मानव जीवन की रक्षा के लिए चिकित्सा सहायता प्रदान करे। सरकार अस्पतालों द्वारा जरूरतमंद व्यक्तियों को समय से चिकित्सा सहायता प्रदान करने में विफलता से अनुच्छेद-21 द्वारा प्रदत्त प्राण के मूल अधिकार का उल्लंघन होता है सांविधानिक अधिकारों से वंचित करने के मामले में न्यायालय से पीड़ित व्यक्तियों को अनुच्छेद-32 और 226 के अधीन प्रतिकर प्रदान करने की शक्ति प्राप्त है। न्यायालय ने सरकारी अस्पतालों में आपात चिकित्सा प्रदान करने के लिए अनेक निर्देश भी किए हैं।

**प्रवासी मजदूरों को मजदूरी देने के निर्देश :** उच्चतम न्यायालय ने जनहित याचिका स्वीकार करते हुए जस्टिस नागेश्वर राव व जस्टिस दीपक गुप्ता की खंडपीठ ने यह निर्देश दिए हैं कि प्रवासी मजदूरों को ठेकेदारों द्वारा उनकी मजदूरी का भुगतान किया जाए। इस महामारी के संकट

के कारण प्रवासी श्रमिक अपने गाँवों में जाने का मजबूर होना पड़ा है और पैदल ही अपने पत्नी व बच्चों को लेकर हजारों कोसों दूर गाँवों के लिए पैदल ही निकल पड़े।

**क्या कोरोना वायरस महामारी के समय मंदिर, चर्च या मस्जिद में नमाज पढ़ना आवश्यक है?**

भारतीय संविधान के अनुच्छेद-25<sup>16</sup> में धार्मिक स्वतंत्रता का मूल अधिकार दिया गया है। प्रश्न यह है कि कोरोना वायरस महामारी के समय मस्जिद में नमाज पढ़ने पर सरकार द्वारा रोक लगाई जा सकती है? इसके लिए संविधान के अनुच्छेद-26<sup>17</sup> को पढ़ना होगा जिसमें लोक-व्यवस्था, सदाचार और स्वास्थ्य के आधार पर रोक लगाई जा सकती है। धर्म सदाचार एवं जन-स्वास्थ्य के प्रतिकूल भी नहीं हो सकता। अतः जहाँ कहीं भी यह लगता है कि धर्म के नाम पर कोई लोक-स्वास्थ्य सदाचार अथवा जन स्वास्थ्य को संकटापन स्थिति में डाला जाने वाला है वहाँ आवश्यक प्रतिबंध लगाया जा सकता है। भारत सहित विश्व के कई देशों में मंदिर, मस्जिद, चर्च आदि धार्मिक संस्थान बंद कर दिए गए हैं।

**सभी अदालतें वीडियो कांफ्रेंसिंग से करे सुनवाई :** उच्चतम न्यायालय ने कोरोना महामारी के चलते शारीरिक दूरी बनाए रखने और अदालतों में भीड़ नहीं जुटाने की बात कहते हुए देश की सभी अदालतों को वीडियो कांफ्रेंसिंग के जरिए सुनवाई करने के निर्देश दिए हैं। उच्चतम न्यायालय ने संविधान के अनुच्छेद-142 के तहत प्राप्त विशेष शक्तियों का इस्तेमाल करते हुए लॉकडाउन के चलते उत्पन्न स्थिति में दिशा-निर्देश जारी किए हैं। ये दिशा निर्देश मुख्य न्यायाधीश एस.ए. बोबड़े, डी.वाई चंद्रचूड़ और न्यायाधीश एल. नागेश्वर राव की त्रि-सदस्यीय पीठ ने दिए हैं।<sup>18</sup>

**यदि कोई राज्य सरकार कोरोना महामारी के समय केंद्र के निर्देशों का पालन नहीं करती है तो क्या उस राज्य में राष्ट्रपति शासन लगाया जा सकता है?**

संविधान के अनुच्छेद-356 में यह प्रावधान है कि केंद्र सरकार राज्यों को समय-समय पर प्रशासनिक निर्देश देगी। जैसा कि वर्तमान समय में कोविड-19 यानि कोरोना महामारी को लेकर राज्यों को इस संबंध में निर्देश दिया जाता है तो राज्यों को उसका पालन करना होगा। यदि कोई राज्य सरकार केंद्र के प्रशासनिक निर्देश पालन नहीं करता है तो उस राज्य में राष्ट्रपति शासन लगाया जा सकता है।<sup>18</sup> इसी प्रकार, अनुच्छेद 356 में यह प्रावधान दिया गया है कि यदि कोई राज्य सरकार संविधान के प्रावधानों के अनुसार नहीं चल रही है तो उस राज्य में राष्ट्रपति शासन लगाया जा सकता है।

क्या कोरोना महामारी के दौरान केंद्र व राज्यों में वित्तीय संबंधों में परिवर्तन आ सकता है?

भारत के संविधान के अनुच्छेद-360 में यह प्रावधान है कि देश की वित्तीय साख को खतरा उत्पन्न होने की स्थिति में केंद्र सरकार वित्तीय आपात की उद्घोषणा कर सकती है। अभी तक भारत में इस प्रकार की आपात स्थिति कभी नहीं लगाई गई किंतु वर्तमान समय में पूरे देश में लॉकडाउन की स्थिति में सभी प्रकार के उद्योग, कारखाने, परिवहन सभी सेवाएँ

बंद हैं। देश की आर्थिक स्थिति ठीक नहीं है। विदेश से आयात व निर्यात बंद हैं ऐसी स्थिति में केंद्र सरकार द्वारा वित्तीय आपातकाल की घोषणा की जा सकती है। कर्मचारियों के वेतन भत्तों में कमी की जा सकती है। अभी राजस्थान में सभी कर्मचारियों के वेतन में से कटौती के निर्देश जारी किए गए हैं। राष्ट्रपति, उपराष्ट्रपति, राज्यों के राज्यपालों ने स्वेच्छा से अपने वेतन में कटौती का फैसला लिया है। मोदी कैबिनेट ने भी सांसदों के वेतन में तीस फीसदी कटौती का फैसला लिया है तथा सांसदों को मिलने वाले फंड भी दो साल के लिए नहीं दिए जाएंगे।

**कोरोना महामारी के प्रभाव :** विश्व स्वास्थ्य संगठन द्वारा इस महामारी को रोकने हेतु कुछ देशों को दवाइयाँ उपलब्ध करा सकता है। आर्थिक सहायता भी प्रदान की जा सकती है। इसका सीधा प्रभाव विश्व के सभी देशों की अर्थव्यवस्था पर पड़ेगा। भारत में हाल ही में रिजर्व बैंक द्वारा रेपो रेट में कमी की गई। कोरोना वायरस के कारण भारतीय अर्थव्यवस्था पर भी प्रभाव पड़ा है।

क्या कोरोना महामारी पर बीमा कंपनियों से मौत पर दावा किया जा सकता है?

भारत में सभी बीमा कंपनियों के द्वारा एक सर्कुलर में कहा गया है कि यदि कोरोना से मृत्यु होती है तो उसके लिए बीमा कंपनियाँ से दावा किया जा सकता है। ऐसे दावों के मामलों में 'फोर्स मेजर' का प्रावधान लागू नहीं होगा। फोर्स मेजर का अर्थ है कि ऐसी अप्रत्याशित दशाएँ, जब समझौते का पालन बाध्यकारी नहीं होता।<sup>19</sup> यह एक ऐसा प्रावधान है, जब प्राकृतिक आपदा, दंगे, महामारी या युद्ध जैसी अप्रत्याशित स्थितियों में बीमा कंपनियाँ क्लेम खारिज कर देती हैं। अतः बीमा विधि के अंतर्गत कोरोना वायरस संक्रमण होने पर मृत्यु होने की स्थिति में दावा किया जा सकता है।

**निष्कर्ष एवं सुझाव :** भारत में क़ानून के अनुसार पूरे देश में लॉकडाउन किया गया है। आपात सेवाओं को छोड़कर सभी पर रोक है। इस महामारी के संक्रमण से बचने का एक ही तरीका होम आइसोलेशन है। सभी अपने अपने घरों पर रहें और सुरक्षित रहें। यदि किसी ने लापरवाही की तो इस महामारी के संक्रमित होने से कोई नहीं बच सकता। भारत में क़ानून तो सभी के लिए समान है सरकार इसको लागू करती है लेकिन इसका पालन करना प्रत्येक सभ्य नागरिक का मूल कर्तव्य है। भारतीय संविधान में मूल कर्तव्यों को ध्यान में रखते हुए राष्ट्र की सुरक्षा व स्वास्थ्य को प्राथमिकता देकर सरकार के निर्देशों की पालना करें।

□

## संदर्भ

1. दैनिक भास्कर 2 अप्रैल, 2020, जोधपुर संस्करण।
2. धारा 2, भारतीय महामारी अधिनियम, 1897

3. भारतीय दंड संहिता, 1860 की धारा 188 भारतीय दंड संहिता, 1860 की धारा 269 और 270 के अधीन संक्रमण को फैलाना दंडनीय अपराध है।
4. <https://www.prabhasakshi.com/column/what-is-difference-between-an-epidemic-and-a-pandemic> कोरोना की महामारी घोषित होने से क्या असर पड़ेगा? क्या कहता है महामारी अधिनियम 1897, नीरज कुमार दुबे, 13 मार्च, 2020
5. रीमति तुलगा (1955)2, इलाहाबाद, बॉबेल, भारतीय दंड संहिता, सेंट्रल लॉ एजेंसी, इलाहाबाद, 1996, पृ. 159
6. धारा 269, भारतीय दंड संहिता, 1860
7. धारा 270, पूर्वोक्त
8. धारा 8, दिव्यांगजन्य अधिकार अधिनियम, 2016
9. धारा 8 का खंड 3, पूर्वोक्त
10. अनुच्छेद 25, संयुक्त राष्ट्र संघ की सार्वभौमिक उद्घोषणा।
11. अनुच्छेद 12, आई.सी.एस.सी.आर. 1966
12. भारत के संविधान के अनुच्छेद 21 : प्राण और दैहिक स्वतंत्रता का संरक्षण 'किसी भी व्यक्ति को अपने प्राण या दैहिक स्वतंत्रता से विधि द्वारा स्थापित प्रक्रिया के अनुसार ही वंचित किया जाएगा अन्यथा नहीं।'
13. कंज्यूमर एजुकेशन एंड रिसर्च सेंटर बनाम यूनियन ऑफ इंडिया (1995)3 एस.सी.सी.42
14. किलोस्कर ब्रदर्स लिमिटेड बनाम इंपलाइज स्टेट इश्योरेंश कारपोरेशन (1996)2, एस.सी. सी. 682
15. अनुच्छेद 25 भारत का संविधान, अनुच्छेद 25 के खंड(ख) में प्रत्येक धार्मिक संप्रदाय को धर्म से संबंधित विषयों का प्रबंध करने का अधिकार की प्रत्याभूति दी गई है। इन मामलों में राज्य को तब हस्तक्षेप करने का अधिकार दिया गया है जब धार्मिक संप्रदाय अपने अधिकार का इस प्रकार प्रयोग करता है जिससे लोक व्यवस्था, नैतिकता या स्वास्थ्य में हस्तक्षेप होता है।
16. अनुच्छेद 26, पूर्वोक्त
17. 7 अप्रैल, 2020, दैनिक जागरण, राष्ट्रीय संस्करण।
18. अनुच्छेद 365, भारत का संविधान
19. 7 अप्रैल, 2020, हिंदुस्तान।



अरविंद भारत

## विधि भारती परिषद् की 'काव्य मंथन' संगोष्ठी

विधि भारती परिषद् के तत्वावधान में 25 जून, 2020 के दिन गूगल मीट के माध्यम से 'काव्य मंथन' संगोष्ठी का आन लाइन सफल आयोजन संपन्न हुआ। काव्य के वरिष्ठ मर्मज्ञों की उपस्थिति और संवेदना से लबरेज कविताओं की मधुरम प्रस्तुति ने भयाक्रांत और मौन मुखरित इस कोरोना काल में आत्मविश्वास व आशाओं का अनहद आकाश भर दिया।

आदरणीय डॉ. आनंद सक्सेना, डॉ. राजेश बत्रा, डॉ. निशा केवलिया शर्मा, डॉ. सुजाता प्रसाद, अमिता अशेष, आदरणीया संतोष खन्ना, डॉ. प्रवेश सक्सेना, आदरणीया संतोष बंसल, विकास पांडेय, ज्योति पांचाल, और अरविंद भारत ने कविता से काव्य का मंथन कर अपनी कविताओं के माध्यम से समय के संघर्ष में महा विपदा कोरोना काल में मानवी समाज में आशा और आत्मविश्वास के जयघोष की कविताएँ सुनाई।

समय के स्वर कवियों को इस मानवतागत अवदान के लिए विधि भारती परिषद् द्वारा 'काव्य गंगा' सम्मान से अलंकृत किया गया।

कार्यक्रम के प्रारंभ में आदरणीया सन्तोष खन्ना ने सभी साहित्य सारथियों का स्वागत आदर किया। मातु शारदे की वंदना के साथ डॉ. सुजाता संसृति ने सुबह सलोनी, उम्मीदों की पायदान कविता (अनुभूतियों की काव्यांजलि : काव्य-संग्रह) से आत्म ऊर्जा में प्रकृतिगत काव्य की सुगबुगाहट झंकृत की। डॉ. राजेश बत्रा ने करो ना करो ना से काल को भी मानवीय एकता की अपार शक्ति से परिचय कराया।

चरण कमल वंदन करते हैं,  
मन चंदन महकाओ माँ।  
मृत न बन अमृत पुत्री,  
निज जीवन रथ संचालक बन।

कविता और मुक्तक के माध्यम से मानव समाज को बड़ी ही मार्मिक गूढ़ता से आत्म जागृत किया। दो लंबी कविताओं के माध्यम से संतोष बंसल चिंतन की लंबी यात्रा तक ले गई। डॉ. निशा केवलिया शर्मा ने --

प्रेम मौन है  
देवत्व से मुक्ति चाहिए  
तारों ने आँखें खोली है।

कविता से यथार्थ और प्रकृति की मनोरम यात्रा कराई।

आदरणीया सन्तोष खन्ना ने संचालन के साथ ही अपनी कविता --

मैंने छोटा-सा शब्द बोल दिया प्यार  
उषा के मुख पर चमक उठा गुलाल  
हजारों रश्मियों दौड़ पड़ी धरा की ओर  
पते पते बूटे बूटे पर खिल उठी बहार।  
के द्वारा मनात्मा तक मानवी संवाद किया।

11 कवियों की इस क्रांतिक टीम ने मानवता के ऊपर आई महामारी की विपदा के प्रति अपने चेतना प्रकाश से आत्मविश्वास और संघर्ष की ऊर्जा का संचार किया।

□

### विधि भारती परिषद् राष्ट्रीय विधि भारती पुस्तक पुरस्कार

वर्ष 2005 से विधि और न्याय के क्षेत्र में हिंदी के प्रचार-प्रसार तथा हिंदी विधि लेखन को बढ़ावा देने के लिए विधि भारती परिषद् ने हिंदी विधि पुस्तकों पर 'राष्ट्रीय विधि भारती पुस्तक पुरस्कार' प्रारंभ किए थे। विधि पुस्तकों पर प्रथम पुरस्कार 7,100/-- रुपए, द्वितीय पुरस्कार 5,100/-- रुपए, तृतीय पुरस्कार 3,100/-- रुपए है।

वर्ष 2019 का राष्ट्रीय विधि भारती पुस्तक पुरस्कार पिछले तीन वर्षों अर्थात् 2017, 2018 एवं 2019 में प्रकाशित विधि पुस्तकों पर दिया जाएगा। विधि भारती पुस्तक पुरस्कार का निर्णय एक तीन सदस्यीय पुस्तक पुरस्कार निर्णायक मंडल द्वारा किया जाएगा जो अंतिम होगा। पुरस्कार विधि भारती परिषद् के एक भव्य समारोह में प्रदान किए जाएंगे।

**विधि भारती परिषद का संक्षिप्त परिचय :** विधि भारती की स्थापना 1992 में तथा उसका पंजीकरण 1993 में किया गया। वर्ष 1994 में उसकी त्रैमासिक द्विभाषिक (हिंदी-अंग्रेजी) पत्रिका 'महिला विधि भारती' का प्रकाशन आरंभ हुआ। पच्चीस वर्ष की अवधि में उसके 100-101 अंक प्रकाशित हो चुके हैं। इस पत्रिका को दिल्ली सरकार की हिंदी अकादमी से सर्वोत्तम संपादन का दो बार पुरस्कार प्राप्त हो चुका है।

**पुरस्कार हेतु पुस्तकें भेजने की विधि :** राष्ट्रीय विधि भारती पुस्तक पुरस्कार के लिए विचारार्थ हिंदी विधि पुस्तक भेजने के इच्छुक लेखक कृपया पुस्तक की तीन प्रतियों के साथ 500/-- रुपए का बैंक ड्राफ्ट विधि भारती परिषद् के नाम से प्रेषित करें। लेखक पिछले तीन वर्षों में प्रकाशित एक से अधिक पुस्तकों के लिए प्रविष्टियाँ भेज सकते हैं। पुरस्कार के विचारार्थ प्राप्त पुस्तकें किसी भी स्थिति में लौटाई नहीं जाएंगी। विधि पुस्तकें भेजने की अंतिम तिथि 31 मार्च, 2020 होगी।

पुस्तकें भेजने का पता

**विधि भारती परिषद्**

बी.एच/48 (पूर्वी), शालीमार बाग, दिल्ली-110088

**दूरभाष :** 27491549, 45579335 **मोबाइल :** 9899651272, 9899651872

**E-mail :** vidhibharatiparishad@hotmail.com

**Website :** vidhibharatiparishad.in

Poonam Pant and Bhumika Sharma

---

## **A Cursory Study of Liability of Internet Service Providers Under I.T. Act, 2000**

One of the unique features of the Internet is that the way in which information is transmitted largely depends on intermediaries, or private corporations which provide services and platforms that facilitate online communication or transactions between third parties, including giving access to, hosting, transmitting and indexing content. These intermediaries include internet service providers, telecom service providers, network service providers, web-hosting service providers, search engines, online auction web-sites, blog owners etc. Intermediaries thus range from Internet service providers (I.S.P. s) to search engines, and from blogging services to online community platforms. With the advent of Web services, individuals can now publish information without the centralized gateway of editorial review common in traditional publication formats. The liability of Internet Service Provider is one of the most controversial legal issues to emerge from cyber space which is the result of the very nature of digital networks. Protecting intermediaries from liability is critical for preserving the Internet as a space for free expression and access to information, thereby supporting innovation and economic development goals. The present paper shall discuss the key provisions relating to liability of I.S.P. in India under the Information Technology Act, 2000 read with its Allied Rules.

**Key Words :** Information Technology Act, India, Internet, I.S.P., Liability.

### **1. Introduction**

Internet Service Providers (I.S.P. ) are performing numerous functions in cyberspace, such as providing access to the Internet, and transmitting or storing information. Internet service providers or Intermediaries are becoming progressively relevant not only in the context of dispute resolution but also in the context of tracking and investigating various kinds of cyber- crimes and other unwarranted criminal activities. In a highly decentralized cyberspace, they have great control over the content once it comes under their domain, just like a government or publishing companies do off-line. Thus, broader liability on I.S.P. s will force them to involve themselves with the regulation of the content, which will possibly protect a great number of potential victims from cyber-violence. I.S.P.

liability is only one of the vehicles by which we can balance competing interests on the Internet.

Governments are often compelled to regulate the flow of information and communication in this medium for a variety of reasons. Such regulation is often carried out by pressurising the intermediaries who provide services to users enabling them to post online content and communicate with each other. This is so because intermediaries, *inter alia*, act as “middle-men” providing platforms to the users, are easy to identify and impose “responsibility” on, and may be able to provide the identification information of users. The issue often debated is the liability of these intermediaries with respect to content created by their users. It is often argued that such frameworks that put these “intermediaries” or platforms at legal risk create a form of proxy censorship. The legal doctrine that governs such liability is based on the tort-law principle of secondary liability for third party action. These intermediaries who are third party defendants in various such actions understandably wonder why they should be made to pay for a third party’s illegal acts and be forced to play complicit in a system that has the ability to suppress legal as well as illegal content, increasing their business costs to an unaffordable level.

Different countries have different provisions to regulate the I.S.P. s. The rationale for affixing the liability and various kinds of liability exist under different jurisdictions.

In India, the law pertaining to Intermediaries is well- defined. The Indian Information Technology Act, 2000 as amended has not only given a legal definition to the term “Intermediary” but has also stipulated the rights, duties and obligations of Intermediaries.

## **2. Liability Under Information Technology Act, 2000**

In the year 2000, India enacted its first law on Information Technology namely, the Information Technology Act, 2000. The Information Technology Act, 2000 is based on the Model law of E-commerce adopted by U. N. C. I.T. R. A. L. in 1996. With the passage of time, as technology developed further and new methods of committing crime using Internet & computers surfaced, the need was felt to amend the Information Technology Act, 2000 to insert new kinds of cyber offences and plug in other loopholes that posed hurdles in the effective enforcement of the Information Technology Act, 2000. This led to the passage of the Information Technology (Amendment) Act, 2008 which was made effective from 27 October 2009. The Information Technology (Amendment) Act, 2008 has brought marked changes in the Information Technology Act, 2000 on several counts.

### **2. 1 Specific Provisions Regarding Liability**

Section 79 of the Information Technology Act, 2000 specifically deals with the liability of Internet Service Providers or Intermediaries. The liability divided

in two phases i.e. before the year 2008 and after 2008. Section 79 has been completely replaced by a new language by virtue of the Information Technology (Amendment) Act, 2008.

### **2. 1. 1 Section 79 of Information Technology Act, 2000**

Section 79 of the Information Technology Act 2000 specifically deals with the liability of Intermediaries. This is the only section under the Information Technology Act which fixes the liability of Intermediary.

#### **(i) Position prior to the Amendment of Information Technology Act, 2000**

Before the amendment of 2008, Section 79 of the Information Technology Act states that person providing any service as a network service provider shall not be liable under this Act, rules or regulations made thereunder for any third party information or data made available by him if he proves that the offence or contravention was committed without his knowledge or that he had exercised all due diligence to prevent the commission of such offence or contravention. (Information Technology Act, 2000; Section 79) According to this section network service provider” means an intermediary;. (Information Technology Act, 2000; Section 79(a))”third party information” means any information dealt with by a network service provider in his capacity as an intermediary;. (Information Technology Act, 2000; Section 79(b)).

Before the amendment of the Information Technology (Amendment) Act, 2008, Section 79 was not clear in its meaning. Earlier, section 79 provided that an internet service provider was not liable under the Act for any third party information or data made available by him if he could prove that the offence or contravention was committed without his knowledge or he has exercised due diligence to prevent the commission of such offence or such contravention.

The earlier section 79 of the Act 2000 had placed the onus to prove lack of knowledge (without describing whether actual or constructive) or exercise of due diligence (without describing its standard on filtering or other activities) on the intermediaries. This led to a lot of ambiguity in scope and application of the concerned provisions.

The earlier section 79 applied only to “Network Service Providers” that were regarded as ‘intermediary’. An intermediary was defined as “with respect to a particular electronic message means any person who on behalf of another person receives, stores or transmits that record or provides any service”. The shortcomings of such a definition were that not all network service providers could fit into narrow definition of intermediary

#### **(ii) Position after the Amendment of Information Technology Act, 2000**

Section 79 of the IT Act, 2000 covers the aspect of liability of intermediaries including Internet service providers. An ‘intermediary’ is defined by IT Act, 2000 in section 2(w) as ‘any person who on behalf of another person receives, stores

or transmits that record or provides any service with respect to electronic record and includes telecom service providers, network service providers, internet service providers, web-hosting service providers, search engines, online payment sites, online- auction sites, online market places and cyber cafes'. Section 79 deals with the liability of the intermediaries as defined in the Act.

Section 79 states that an intermediary shall not be liable: For any third party information, data, or communication link made available or hosted by him. (Information Technology Act, 2000; Section 79(1). The provisions of sub-section (1) shall apply if— the function of the intermediary is limited to providing access to a communication system over which information made available by third parties is transmitted or temporarily stored or hosted; or the intermediary does not— initiate the transmission, select the receiver of the transmission, and select or modify the information contained in the transmission; the intermediary observes due diligence while discharging his duties under this Act and also observes such other guidelines as the Central Government may prescribe in this behalf. (Information Technology Act, 2000; Section 79(2)). The provisions of sub-section (1) shall not apply if— the intermediary has conspired or abetted or aided or induced, whether by threats or promise or authorise in the commission of the unlawful act; upon receiving actual knowledge, or on being notified by the appropriate Government or its agency that any information, data or communication link residing in or connected to a computer resource controlled by the intermediary is being used to commit the unlawful act, the intermediary fails to expeditiously remove or disable access to that material on that resource without vitiating the evidence in any manner. (Information Technology Act, 2000; Section 79(3). The expression “third party information” means any information dealt with by an intermediary in his capacity as an intermediary”. (Information Technology Act, 2000; Explanation to Section 79)

Section 79 that stands amended by IT (Amendment) Act, 2008, exempts intermediaries from liability in certain instances. It states that an intermediary will not be liable for any third party information, data or communication link made available or hosted by him except as specified in Section 79(2) and (3). The 'third party information' is described in Explanation to Section 79 as any information dealt with by an intermediary in his position as an intermediary. The Act extends safe harbour protection only to those instances where the intermediary merely acts a facilitator and does not play any part in creation or modification of the data or information. The provision also makes the safe-harbour protection contingent on the intermediary removing any unlawful content on its computer resource on being notified by the appropriate Government or its agency or upon receiving actual knowledge. The intermediary is also not liable if it does not initiate the transmission, select the recipient and select or change the information contained in the message. (Information Technology Act, 2000; Section 79(2)(b).

An intermediary is not liable for third party information if it observes due diligence in performing its duties and complies with the guidelines of the Central

Government. Section 79(3) provides conditions when an intermediary is liable for third party information. Section 79(3) (a) states that an intermediary is liable if it conspires or abets or aides or induces through threats or promises or otherwise to commit an unlawful act and the intermediary is also liable if on receiving actual knowledge or on receiving a notice from the government or its agency that any information residing in or connected to a computer resource which is managed by an intermediary is being used to commit the unlawful act, the intermediary does not quickly remove or disable access to that material without vitiating the evidence in any manner.

Following the 2008 Amendment, the government notified the following four Rules on April 11, 2011 viz. The IT (Reasonable Security Practices and Procedures and Sensitive Personal Data or Information) Rules, 2011, prescribe security standards for personal information stored electronically; The Information Technology (Intermediary Guidelines) Rules, 2011, provide due diligence requirements for intermediaries.; The IT (Guidelines for Cyber Café) Rules, 2011, require cyber cafés to identify users and maintain records of use.; IT (Electronic Service Delivery) Rules, 2011, provide a framework for electronic delivery of services such as licenses, forms and certificates.

### **2.1.2 Liability under Information Technology (Intermediaries Guidelines) Rules, 2011 (to be read with Section 79 of the IT Act)**

On the 11th of April 2011, the Government of India notified the 'Information Technology (Intermediaries Guidelines) Rules 2011' (herein after referred to as 'rules') in pursuance of Sections 79 and 87(2) of the Information Technology Act, that prescribe, amongst other things, guidelines for administration of takedowns by intermediaries and which laid down detailed procedures for regulation of intermediaries and online content.

The Information Technology (Intermediaries Guidelines) Rules, 2011 deals with due diligence to be observed by the intermediary. (Rule 3)

The Intermediary shall publish the rules and regulations, privacy policy and user agreement for access or usage of the intermediary's computer resource by any person. (Rule 3(1)) Such rules and regulations, terms and conditions or user agreement shall inform the users of computer resource not to host, display, upload, modify, publish, transmit, update or share any information that - belongs to another person and to which the user does not have any right to; is grossly harmful, harassing, blasphemous, defamatory, obscene, pornographic, paedophilic, libellous, invasive of another's privacy, hateful, or racially, ethnically objectionable, disparaging, relating or encouraging money laundering or gambling, or otherwise unlawful in any manner whatever; harm minors in any way; infringes any patent, trademark, copyright or other proprietary rights; violates any law for the time being in force; deceives or misleads the addressee about the origin of such messages or communicates any information which is grossly offensive or menacing in nature; impersonate another person; contains software

viruses or any other computer code, files or programs designed to interrupt, destroy or limit the functionality of any computer resource; threatens the unity, integrity, defence, security or sovereignty of India, friendly relations with foreign states, or public order or causes incitement to the commission of any cognizable offence or prevents investigation of any offence or is insulting any other nation. ". (Rule 3(2)) The intermediary shall not knowingly host or publish any information or shall not initiate the transmission, select the receiver of transmission, and select or modify the information contained in the transmission as specified in sub-rule (2). (Rule 3(3))

The following actions by an intermediary shall not amount to hosting, publishing, editing or storing of any such information as specified in sub-rule: (2)—temporary or transient or intermediate storage of information automatically within the computer resource as an intrinsic feature of such computer resource, involving no exercise of any human editorial control, for onward transmission or communication to another computer resource; removal of access to any information, data or communication link by an intermediary after such information, data or communication link comes to the actual knowledge of a person authorised by the intermediary pursuant to any order or direction as per the provisions of the Act;(Proviso to Rule 3(3)).

Elaborate provisions have been made in the rules including provision of the Grievance Officer and his contact details as well as mechanism by which users or any victim who suffers as a result of access or usage of computer resource by any person in violation of rule 3 can notify their complaints against such access. The Grievance Officer shall redress the complaints within one month from the date of receipt of complaint. (Rule 3(11))

### **Conclusions and Suggestions**

While users should remain responsible for their unlawful online activities, policies protecting intermediaries from liability for content posted by third parties will expand the space for expression and innovation and better promote the Internet as a platform for a wide range of beneficial activities. If, in contrast, private intermediaries are discouraged from allowing users to post content because of liability concerns, then opportunities for speech will be greatly diminished and the full benefits of the information society will remain unrealized. Internet communications should be entirely self-regulated because such communications cannot or should not be the subject of government regulation. A no-regulation zone around Internet communications, based largely on the unexamined view that Internet activity is fundamentally different in a way that justifies broad regulatory exemption.

I.S.P. s should be made liable to remove infringing material only if they are technically able and may reasonably be expected to prevent its use. The focus should be on the reasonableness, because it will be also be technically possible to stop access to illegal contents caused by the I.S.P. in the worst case simply



by giving up all the services provided. This doctrine of reasonability and practicality is just not existent within Section 79 of the I.T. Act and needs to be brought in as it would be futile to fix liability which cannot be reasonably fulfilled.

- The intermediaries should be classified and according to this classification all the different intermediaries, rules should be followed for different types of intermediaries, as an intermediary which might need more than 36 hours time for applying action on take down notice.
- Information and Technology (Intermediaries *Guidelines*) *Rules 2011* should be refined and advanced for not infringing the essentials of Article 19 of Indian constitution and provide natural justice for better functioning in the dynamic India which is becoming promoter of freedom of speech and expression.
- Manual filtering or automatic screening requirements should be imposed on them in order to prevent copyright infringement, sale of counterfeit products, prescription drugs, obscene material.
- Web hosting providers or hosts should in principle be immune from liability for third party content when they have not been involved in modifying the content in question.
- Privatised enforcement mechanisms should be abolished. Hosts should only be required to remove content following an order issued by an independent and impartial court or other adjudicatory body, which has determined that the material at issue is unlawful.
- Notice-to-notice procedures should be developed as an alternative to notice and take down.
- Notice-to-notice systems should meet a minimum set of requirements, including conditions about the content of the notice and clear procedural guidelines that intermediaries should follow.
- Clear conditions should be set for content removal in cases of alleged serious criminality.
- Intermediaries should not be made to decide on the legality or otherwise of user generated content.
- Take-down should be resorted by the intermediaries only in cases where privacy of an Individual is breached by uploading of obscene content. In case of adoption of a take-down mechanism, there should be a put-back provision to enable the content-creator to respond to the complaint. There should be a provision of counter notice mechanism to the take-down notice. There should be a put-back provision to restore the content if the complainant fails to obtain a court order within a stipulated time. There should be clear guidance for Intermediaries about what is considered a valid notice and a standard form should be prescribed in the Rules for submitting a notice. There should be penalties for unjustified and frivolous notices.
- The Courts should be the final authority to decide on the legality of content when the takedown request is opposed.

- Intermediaries should not have an adjudicatory role in acting on take-down requests.
- The intermediary should publish on their website a clear and easy to approach complaint redressal procedure.
- Access to private information of users held by the intermediary should be provided only after complying with sufficient safeguards as mandated by the Supreme Court in People's Union for Civil Liberties v. Union of India & Anr. on telephone tapping and statutes.
- Governments everywhere should adopt policies that protect intermediaries as critical actors in promoting innovation, creativity and human development.
- Intermediaries must be transparent to the user involved about measures taken, and, where applicable, to the wider public; provide, if possible, forewarning to users before the implementation of restrictive measures; and minimize the impact of restrictions strictly to the content involved.
- It must clearly require an I.S.P. to have actual knowledge of any infringing act to be held liable. To make it convenient for I.S.P. s, they could be asked to designate an agent with the requisite authority to receive complaints regarding offenses committed on the Internet. This will ensure that the I.S.P. has sufficient knowledge of the abuses on the Internet.
- There must be effective remedies for affected users, including the possibility of appeal through the procedures provided by the intermediary and by a competent judicial authority

The I.S.P. industry should not be made a deep-pocket, third-party defendant in every online copyright infringement suit. Law's lack of predictability in this area and its standards for I.S.P. liability over the past few years have caused real concerns for this new and growing industry. I.S.P. s are prime movers of information which is the raw material in knowledge economy. In a world where the growth of I.S.P. industry is directly proportional to the spread of information and connectivity is used synonymously with advancement, the I.S.P. s are transporters of the information superhighway, need precise rules and regulations to govern their activities.

In India, provided that the existing safe harbor regime is improved, online intermediaries can become a significant part of the economy. Keeping in mind the situations and characteristics of Indian legal system, the liability of I.S.P. should be defined as per the existing statutes for contributing to illegal activities and then it be filtered through the Information Technology Act. The preponderance of legislations around the world containing limitations clauses for ISP liability make us safely conclude that their liability has to be limited. The Information Technology Act, 2000 is a welcome step towards this direction. The concept of I.S.P. is quite wide and subsumes within itself many roles within the domain of network communications. World over various statutes dealing with the liability of I.S.P. s have classified I.S.P. s into different heads like access providers,

hosting service providers, etc. and their liability depends on their respective role in overall network communication. But no such classification has been attempted under the Information Technology Act. It is desirable that in the Information Technology Act various types of I.S.P. s should be distinguished, depending upon the specific functions they perform and their liability should also be fixed keeping in mind the role they play in the overall transmission.

As technology evolves at a fast pace, the law should not be found wanting. The law should be an enabling factor that ensures that citizens enjoy their right to freedom of speech and expression without any hindrance. India, being the largest democracy in the world should lead the world in ensuring that the citizens enjoy the right to express themselves freely online. Governments everywhere should adopt policies that protect Internet intermediaries as critical actors in promoting innovation, creativity and human development.

□

### **References**

- Bhumika Sharma & Poonam Pant (2017) "Online Intermediaries Rationale And Aspects of Liability" *LawZ*, 17(2), 29-31.
- Bhumika Sharma & Poonam Pant (2017), "Evolution of Intermediaries and Internet Service Providers: An Outline" *Commonwealth Law Review Journal*, 3. 1, 2017, 45-56. Retrieved from <http://thelawbrigade.com/publications/commonwealth-law-review-journal/clrj-volume-3/>.
- Information Technology Act, 2000.
- Poonam Pant & Bhumika Sharma (2019), "Liability of Internet Service Providers across Various Countries: An Overview", *Legal Research Development*, 4(1), 15-24. Retrieved from [http://lrdjournal.com/admin/uploads/142\\_pdf.pdf](http://lrdjournal.com/admin/uploads/142_pdf.pdf).

Shivangi Pawar

---

**The Union and The State Relationship :  
An elementary Knowledge about the role of  
their working and functions including the  
current Fiscal Scenario of National Unity by  
COVID-19**

**"There are many to preach;  
Alas so few to practice.**

**It is better that empty precepts and dumped in streams,  
For preaching, without practice is nothing but senseless screams. "**

**– Saint Kabir Das Ji**

The theory and practice of Federal government in India has hitherto received a treatment which is excessively formalists. It has become the normal idiom of political controversy to speak in terms of increasing encroachment by the Union government on the functions of the state. <sup>1</sup> This has become the normal routine of administration, little resort being made to the extraordinary articles of the Constitution specially providing for the Central interventions.

**Keywords** : Federal system, Constitution, administrative functions, government, Decentralization, State government, Central government, Niti Aayog Public Finances, Union government, Union State Relation.

### **I. Introduction**

Constitution is a living document, an instrument which makes the government system works. The federal system of government was conceived by our founding forefathers. The concept of federalism in our constitution was designed by an administrative rather than a contractual federation to bring political stability.

In India, at local level to increase the participation of local persons, to fulfill this object, the local self-government was established. The local self-government is the most powerful instrument of Democratic Decentralization of powers in the government. In year 1992, by 73<sup>nd</sup>, 74<sup>th</sup> Constitutional Amendment

Act, they have been given the constitutional status.

**Meaning and definition of Government :** The state is an abstract concept, which is an intangible and invisible institution, the organization which gives it a concrete shape is called the government. The overall will of the state is determined, expressed and implemented by the government. We can say that the government is the only expression of that abstract concept of state. The state cannot be imagined without a government which makes and executes the laws to serve the people residing in certain territory and punish and bring on the right path the people who don't obey the laws in a proper way.

Defining the government, Garner has said, "*Government is a tribunal or a machine, by which the policies of a state are finalized, general issues are regulated and the common interests are upgraded.*"

But still few questions are left to be answered like : Does a federal Constitution gives better power to people? What improvements will overcome and improve the Union – State Relations? What role states should play to support the Central Government? What methods are to be establish for better governance? What initiatives are to taken at national level for still backward states?

### **Three Major Parts of a Government are as follows-**

1. Legislature.
2. Executive.
3. Judiciary.

#### **Legislature**

The legislature is the first among the three parts of the government. The formation of the legislature in the Indian ruling system is on two levels;

**First :** Union legislature called as Sansad or Parliament.

**Second :** State legislatures

There is a provision in the article 79 of the Constitution that the Federation of India will have a parliament. There is a provision which is constituted by the President and the two Houses and these would be named Lok Sabha and Rajya Sabha respectively. Thus, the collective name of all the three- the President, Lok Sabha and Rajya Sabha is called PARLIAMENT.

#### **Executive**

The executive of government is the one that has sole authority and responsibility for the daily administration of the state bureaucracy. The division of power into separate branches of government is central to the republican idea of the separation of powers.

The following are considered the main organs for executive functions in India.

- I. President
- II. Vice president
- III. Prime minister

IV. Cabinet, ministries and agencies

V. Secretaries

There are total 58 Ministries and 93 departments under it.

**Judiciary** : India's independent union judicial system began under the British, and its concepts and procedures resemble those of Anglo-Saxon countries. The Supreme Court of India consists of the chief justice and 33 associate justices, all appointed by the president on the advice of the chief justice of India. The jury trials were abolished in India in the early 1960s, after the famous case *KM Nanavati v. State of Maharashtra*, for reasons of being vulnerable to media and public pressure, as well as to being misled.

Unlike its United States counterpart, the Indian justice system consists of a unitary system at both state and union level. The judiciary consists of the Supreme Court of India, high courts at the state level, and district courts and sessions courts at the district level.

**Federal Competitiveness** : Article 1 of the constitution declares that India, that is Bharat, shall be a Union of States. Part XI of the Indian constitution defines the power distribution between the federal government (the Centre or union) and the States in India. This part is divided between legislative, administrative and executive powers. The financial relationship between the centre and states as covered in Part XII of the Indian Constitution, including Article 280 that deals with the mandate for setting up a periodic Finance Commission. Indian Constitution is said to be federal in form, but unitary in spirit.

The phrase "unitary bias" arises because residuary powers—the power to legislate on matters not enumerated in the central, state or concurrent list of subjects — is given to the centre under Article 248.

In any federation, to the extent possible, States should be financially self-sufficient so that they enjoy maximum autonomy and write their growth story on their own, but in India, the States dependence on the Centre for all development make it impossible. It is evident from the reaction of our Prime Minister Mr. Narendra Modi, on "systematic onslaught on the federal structure" – "It is high time the Centre realizes that giving to the States what rightfully belongs to them will not weaken the Centre. The states must co-ordinate with the Union Government and not remain subservient to it. Co-operative and not coercive federalism must be the norm in our country".

The government has taken many steps to economically empower states and make them key stakeholders in India's development agenda. The sharp increase in share of untied funds to states from the pool of central taxes to 42% (from 32% now) as well as giving states more say and flexibility in centrally sponsored schemes can be counted as a big push to cooperative federalism.

**Pan India** : But development of Pan India is possible only when states are ready to take advantage of the changing scenario on economic front and on center-state financial relationship. Now the time has come where states' GDP

growth rate is equally in lime light as of India's GDP or States ranking in ease of doing business has become one of the important factor for FDI destination within country.

Even after seven decades of independence, Indian states can easily be grouped as advanced, developing, backward and most backward. To achieve and sustain high GDP growth rate (more than 9%pa) of India, states should participate very actively in the development process like 'Make in India', 'Digital India' etc. States should compete against each other not only in attracting the investment from outside but for centre's ambitious program as well without allowing any politics in between. Political differences should not be the road block for economic alliance between State and centre.

**The evolving dynamics of union–state fiscal relations :** This focuses on the altered public financial management dynamics of state governments. Their role in public finances is crucial as indicated by the share of net Union Government taxes contributing about 43 percent of total taxes of the Union and State Governments in 2013-14, with states accounting for the rest. The total expenditure in 2017-18 is targeted at Rs 79, 472 crore. The revised estimate for the total expenditure in 2016-17 was Rs 61, 480 crore, which is 4. 9% (Rs 3, 189 crore) lower than the budgeted target of 2016-17. The corresponding proportions for total expenditure for 2013-14 are 49 percent for the Union government and 51 percent for the State Governments.

The key objective function (requiring well-considered trade-offs in a medium-term perspective) at all levels of government, in an environment of co-operative as well constructively competitive federalism, will continue to be the following:

- To progress towards fiscal consolidation (i.e. adhering to fiscal deficit, debt level, and contingent fiscal liabilities guidelines), enhancing fiscal flexibility (i.e. the ability to reallocate public spending towards priority areas) and increasing government investment in identified priority areas.
- To improve public expenditure management, involving spending less, (by measures such as more effective procurement practices), spending well (i.e. improvements in relationship between expenditures incurred and output obtained in physical terms), and spending wisely (i.e. Improving overall societal welfare).
- Enhancing competence in generating resources from non-conventional methods including using state assets more productively through various measures such as monetizing and auctioning of state's tangible and intangible property rights.

The above is indeed a complex objective function, requiring much greater level of professionalism in management of public finances and public governance at all levels of government. The term co-operative federalism is meant to create a process and an environment of greater trust between the Union Government and the States, as without such trust government initiatives

are severely constrained in obtaining desired outcomes. The Union Governments' decision to let the States benefit from the recent coal auctions is an illustration of the steps which can improve trust between the Union and States.

The competition among the States will increase as the gap between their resources and responsibilities reduces over time. Such competition however should not occur at the cost of overall national progress.

### **Report of the 14<sup>th</sup> Finance Commission**

Among the several developments impacting on Union-State fiscal relations, are highlighted below.

The Report of the 14<sup>th</sup> Finance Commission (FC). The Report of the 14<sup>th</sup> Finance Commission represents a changed paradigm for Union – State fiscal relations. As Prime Minister Modi, in accepting the recommendations of the 14<sup>th</sup> FC stated "there is a shift from scheme and grant- based support from the Central Government to a devolution based support".

The distinction between plan and non-plan revenue and expenditure has outlived its usefulness as all state plan revenue expenditure will need to be met from resources devolved to the States. It is in this context that the increase of 10 percentage point devolution of divisible resources to the state to 42 percent must be viewed. The 14<sup>th</sup> FC has also proposed a new horizontal formula for the distribution of state's share in the divisible pool. While all states will gain from the 14<sup>th</sup> FC's recommendations, the gains will be uneven. In general, spending capacity of the states will increase substantially.

The 14<sup>th</sup> FC also attempts to change the incentive structure of the states towards greater professionalism and accountability in their fiscal management, and suggests institutional mechanisms for better monitoring of fiscal rules and to progress towards 'cooperative federalism'.

**Niti Aayog** : The NITI Aayog is a policy think tank of the Government of India, established with the aim to achieve sustainable development goals with cooperative federalism by fostering the involvement of State Governments of India in the economic policy-making process using a bottom-up approach.

**The NITI Aayog** : The establishment of the National Institution for Transforming India (NITI) *Aayog* (the word *Aayog* appears redundant, and could be dropped) on January 1, 2015, as a replacement for the unlamented former Planning Commission, represents another significant development which is likely to change the dynamics of the Union–State financial relations.

The structure of NITI *Aayog*, in which Chief Ministers of States are represented, has the potential to facilitate Union-State coordination, coherence, and effectiveness of the policy initiatives, including in public financial management. NITI *Aayog* could also help in generating ideas and body of knowledge that could contribute to better understanding of the implications of the policy/program/scheme proposals before they are implemented, and



thereby helping to achieve better outcomes. Its success however will require a degree of trust between the Union Government and the States, and to put greater focus on outcomes or results obtained from public policy initiatives than on spending.

In the first meeting of NITI Aayog on February 8, 2015, three sub-committees of Chief Ministers were constituted. One of these schemes on analyzing the Central Sponsored Scheme (CSS), with a view to reducing their number drastically, and transferring some entirely to states to design and implement to realise state-specific desired outcomes, is relevant for the discussion here. The outcome of the deliberations will provide States with greater control over their resources and initiatives, but will also require greater institutional and organizational capacities and accountability from the States.

As NITI Aayog evolves as an institution, states will have increasing opportunities to shape Union-State relations in the spirit of co-operative federalism, while competing with each other in terms of improving outcomes of public policies.

**GST (Goods and Services Tax)** : The introduction of dual GST at the Union Government and at the State level is among the most ambitious consumption tax reforms attempted in India. The current constitution does not permit the Union Government to levy sales tax on goods and does not permit the States to levy sales tax on services. This anomaly is what the GST Constitutional Amendment seeks to correct. The GST will permit goods and services to be taxed in uniform manner, substantially reducing compliance costs, tax, structure, and will enable unified national level market goods and services to emerge.

The GST thus represents another area with significant impact on Union-State financial relations. Establishing a task force to help smoothen GST implementation (in many states, sales tax comprise between half and two-third of state's own tax revenue), and improve fiscal systems. In design and implementation of the GST, there is scope for co-operative federalism initiatives, such as in shared services, particularly in IT, TIN, and data mining areas.

### **Current Fiscal Scenario of National Unity by COVID-19**

Medical data changes hourly, but as of 5 March, 2020 the ten nations hit hardest by COVID-19 is almost identical to the list of the ten largest economies in the world (Iran and India are the exceptions). The US, China, Japan, Germany, Britain, France, and Italy are all in the top-ten most affected by the disease. While China is by far the hardest hit, the last few days have seen an exponential growth of cases in the G7 economies. Taking just the US, China, Japan, Germany, Britain, France, and Italy, they account for :

1. 60% of world supply and demand (GDP)
2. 65% of world manufacturing; and
3. 41% of world manufacturing exports.

The first priority is to stop Covid-19's spread, especially as India's weak health system and lack of safety nets will wreak havoc if the disease spreads widely. Major economies are headed for a recession, and global stock markets have taken a huge hit.

India's economy, already reeling, must now weather this external threat as well. Its financial markets have declined sharply as foreign portfolio investors pull out of India's equity markets, weakening the rupee, despite \$2 billion of forex-swaps by RBI. What India needs is not piecemeal actions, but coordinated action by RBI and the finance ministry, as well as by key agencies dealing with health, education, transportation and commerce, and state governments in a 'whole of government' framework.

### **Conclusion**

- The developments will significantly alter the dynamics of Union government-State relations, particularly in the area of public financial management. There is strong merit in initiating a high quality public policy dialogue on how the States can prepare themselves to take advantage of the opportunities arising from the changed dynamics of Union-State relations.
- State should actively participate in national reform agenda and avail the opportunities created with the support of central government.
- Establishing more and more economic activities, developing infrastructure, maintaining law and order and good governance are the mantras for sustainable growth for any state but backward states have to act faster, continuous and for longer period to come at par with already developed states.
- The central government needs to handhold these backward states through policy provisioning on account of various fronts ranging from tax incentives, additional fund allocation to transferring the national projects specially related to capacity building to those states under big bang theory. Chief Ministers of all North East states, Bihar, Orissa, Jharkhand, and Chhattisgarh should proactively engage themselves in making their states as the first destination for the agent of development. This will be a win-win situation for both state and centre and will certainly be a game changer in the future.

### **Suggestions**

- It is an attempt to points out the earnest effort for e-Governance in India by the union and state governments to complete this daunting process. e-Governance is the application of information and communication technology in transactional exchanges of government services and information between government, employee, citizen, and business.
- It is automated administration processes accessible on-line.

Internationally most countries are benefit from the e-governance. Information and communication technologies have a valuable potential to help to meet good governance goals in India. Yet that potential remains largely untapped, because of poor human, organizational and technological infrastructure and because of the inappropriate approaches taken by donors, vendors and governments.

- Focusing on the altered public financial management dynamics of state governments and analyzing the opportunities and challenges.
- States can compete constructively on achieving desirable outcomes for the society, rather than the current practice of focusing only on getting larger share from the Union Government, while making insufficient effort to improve their public financial management.
- We require a mind-set change and higher level of political and citizenry maturity. The devolution – based approach will make more resources available to the States (signifying opportunities) but will also increase their responsibilities and make greater demands on their capabilities and capacities (signifying challenges).
- Those states that focus on initiatives in public financial management and in improving governance to enable taking advantage of the opportunities will be in a better position to better improve welfare of their residents.

#### **Table of cases**

1. Wallace vs. Income-tax Commissioner, Bombay
2. State of West Bengal vs. Union of India
3. State of Karnataka vs. Union of India
4. S. R. Bommai vs. Union of India
5. IC Golaknath vs. State of Punjab, 1967
6. Indira Gandhi vs. Raj Narain, 1975
7. Maneka Gandhi vs. Union Of India
8. State of Orissa vs. Ram Bahadur Thapa, 1959
9. Kesavananda Bharti vs. State of Kerala
10. NALSA vs Union of India, 2014



#### **References**

- Wikipedia • Constitution of India • RSTB • Articles
- [https://economictimes.indiatimes.com/news/economy/finance/finmin-writes-to-rbi-on-relief-measures/articleshow/74819192.cms?utm\\_source=contentofinterest&utm\\_medium=text&utm\\_campaign=cppst](https://economictimes.indiatimes.com/news/economy/finance/finmin-writes-to-rbi-on-relief-measures/articleshow/74819192.cms?utm_source=contentofinterest&utm_medium=text&utm_campaign=cppst)
- <https://www.bing.com/search?q=famous+cases+of+union+and+state&form=EDGTCT&qs=HS&cvid=744804815e164d8fa73738a3b04aab3e&cc=US&setlang=en-US>

Prema Pandey

---

## **Constitutionality of Delegated Legislation in India**

Montesquieu's doctrine separation of powers has been adopted in India but it has not been adopted absolutely. The live example of it is 'Delegated legislation'. Delegated legislation is one of the most inevitable parts of administration. Along with being most significant, it was one of the most debatable issues in India. Delegated or subordinate legislation may be defined as rules of law made under the authority of an act of parliament. Delegated legislation thus is a legislation made by a body or person other than the sovereign in parliament by virtue of powers conferred by such sovereign under the statute. This paper deals with the constitutionality of delegated legislation in India.

### **Introduction**

The Indian Constitution has established a Welfare State<sup>1</sup> which mandates that the State shall legislate on innumerable activities touching human lives in order to promote the 'maximum happiness of the maximum number of people'.<sup>2</sup> Consequently, the State has to undertake legislation on a variety of subjects. In view of this increasing legislative activity, the legislatures will not find adequate time to legislate on every minute details and limit themselves to policy matters and leaving a large volume of area to executives to frame rules to carry out the purposes of legislation. Thus, the need for delegation became indispensable and it was sought to be justified on grounds of 'speed', flexibility and adoptability'. The application of law to changing circumstances was made feasible through the instruments of 'rules' framed by the executive. It is not surprise to find that during the years (1973-77) spanning a period of 4 years Parliament enacted 300 statutes but the rules framed by the executive exceeded 25000. This has been observed by the apex court in the Avinder Singh's case.<sup>3</sup>

The Indian constitution permits subordinate legislation by delegation. Art. 13(3) of Constitution of India provides that 'law' includes any ordinances, orders, bye-laws, rules, regulation, notification, custom or usages having in the territory

of India force of law.

Legislatures having delegated their powers, have to bear the responsibility to ensure that the delegatee shall not over-step the legitimate domain and commit a violation by exceeding or abusing the powers delegated. Thus, the legislatures have to control the delegated legislation and if not, executives may exercise the delegated power to become a potential dictator or even becoming a parallel legislature. This legislative control over delegated legislation has become a 'living continuity as a constitutional necessity'. The rule of majority in democratic systems have virtually made legislative controls ineffective. A similar statement is found in Wade & Forsyth. A more serious observation has been made by Mr. Lloyd George to the effect that 'legislatures have no control over the executive'. All these observations are pointers to the view that had the Parliamentary control over delegated legislature been effective, the need for judicial control would not have arisen or probably reduced to the minimum. This has not been so, hence, judicial control has become an inevitable necessity to prevent executives acting as super-legislatures or potential dictators. <sup>4</sup>

#### **Need to control exercise of delegated legislation**

In 1929, the Lord Chief Justice, Lord Heward in his book 'The New Depotism' criticized the growth of delegated legislation and pointed out the dangers of its abuse. As a result, the committee on Minister's power was set up which in its report accepted the necessity for delegated legislation but considered that the power delegated might be misused and recommended some modes of control over delegated legislation.

Delegated Legislation is deemed necessary for a number of reasons. Firstly, the parliament does not have the time to deliberate and debate every detail of complicated rules. Delegated legislation allows laws to be made quickly than Parliament as Parliament does not sit all the time and its procedure is rather slow because each Bill has to pass through all the stages. Another reason why delegated legislation is necessary is because MP's do not frequently have the technical ability required. Knowledge is required for example, at work for safety or when carrying out difficult taxation proposals, this is where delegated legislation can use their professionals in their favoured topics. Furthermore, for the local individuals it is vital that they recognize and take into account their needs. The democratic bodies have important powers to make delegated legislation. It can also be easily revoked so that legislation can be updated frequently for the such as concerning welfare benefits. Delegated legislation comes into great benefit when problems occur concerning the result of a statue.

There are a numerous critical reasons why it is necessary to have control over delegated legislation. There are many important reasons why it is necessary to have controls over delegated legislation. Currently delegated legislation is made by non-elected bodies away from democratically elected

politicians (parliament), as a result many people have the power to pass delegated legislation, which provides a necessity for control, as without controls bodies would pass outrageous unreasonable legislation which was attempted in the past; in the *Strickland V Hayes Borough Council*<sup>5</sup> where a bylaw prohibiting the singing or reciting of any obscene language generally, was held to be unreasonable and as a result the passing of this delegated legislation was rejected. Taking into account that legislation is made by elected representatives, individuals have the aptitude to pass delegated legislation. Without control, there would be many absurd laws such as the Strickland's case. There are a number of cases where delegated legislation has come into power to abstain damage to authorities for. A criticism of delegated legislation is that too often power is given to other individuals rather than those who had power at the beginning. Also, with access delegated legislation, critics have argued that there is overuse in the law.

Delegated legislation is not without its criticism. The main defects of delegated legislation are follows :-

1. It lacks democracy as too much delegated legislation is made by unelected people.
2. Delegated legislation is subject to less Parliament scrutiny than primary legislation. Parliament, therefore, has a lack of control over delegated legislation and this can lead to inconsistencies in laws. Delegated legislation, therefore, has the potential to be used in ways which Parliament, had not anticipated when it conferred the power through the Act of Parliament.
3. Delegated legislation is the lack of publicity surrounding it. When law is made by statutory instrument, the public are not normally notified of it whereas with Acts of Parliament, on the other hand, they are widely publicized.

One reason for the lack of publicity surrounding delegated legislation is because of the volume of delegated legislation made and this result in the public not being informed of the changes to law. There has also been concern expressed that too much law is made through delegated legislation. Thus, it can be said that delegated legislation is necessary in our present but there must be control over it.

### **Constitutionality of Delegated Legislation in India**

The question of permissible limits of the Constitution within which law making power may be delegated can be studied in three different periods for the sake of better understanding.

#### **When the Privy Council was the highest court of appeal**

The Privy Council was the highest court for appeal from India in constitutional matters till 1949. The question of constitutionality same before

the Privy Council in the famous case of **R. v. Burah**.<sup>6</sup>

**Brief Facts :** An Act was passed in 1869 by the Indian legislature to remove Garo Hills from the civil and criminal jurisdiction of Bengal, vesting the powers of civil and criminal administration in an officer appointed by the Lieutenant Governor of Bengal. The Lieutenant Governor was further authorised by Section 9 of the Act to extend any provision of this Act, with incidental changes to Khasi and Jaintia Hills. One Burah was tried for murder by the Commissioner of Khasi and Jaintia Hills and was sentenced to death. The Calcutta High Court declared Section 9 as unconstitutional delegation of legislative power by the Indian legislature on the ground that the Indian legislature itself is a delegate of British Parliament, therefore, delegate cannot further delegate.<sup>7</sup>

**Held :** The Privy Council On appeal reversed the decision of the Calcutta High Court and upheld the constitutionality of Section 9 on the ground that it is merely a conditional legislation. The decision of the Privy Council was interpreted in two different ways. One interpretation was that since the Indian legislature is not a delegate of British Parliament, there is no limit on the delegation of legislative functions. According to the other interpretation, it was argued that since the Privy Council has validated only conditional legislation therefore, delegation of legislative power is not permissible.

The doctrine of conditional legislation was again applied by the Privy Council in **King Emperor Vs. Benoari Lal Sharma**,<sup>8</sup> In this case Conditional legislation was again applied by the privy council wherein the the validity of an emergency ordinance by the Governor-General of India was challenged *inter alia* on the ground that it provided for setting up of special criminal courts for particular kinds of offences, but the actual setting up of the courts was left to the Provincial Governments which were authorised to set them up at such time and place as they considered proper. The Judicial Committee held that "this is not delegated legislation at all. It is merely an example of the not uncommon legislative power by which the local application of the provisions of a statute is determined by the judgment of a local administrative body as to its necessity." it upheld the constitutionality of an ordinance passed by the Governor General for the establishment of special courts and delegated power to the provincial governments to declare this law applicable in their provinces at any time they deem fit.<sup>9</sup>

The Privy Council held that "Local application of the provision of a state is determined by the judgment of a local administrative body as to its necessity."

Therefore, during the period the Privy Council was the highest court of appeal, the question of permissible limits of delegation remained uncertain.

### **When Federal Court became the highest court of appeal**

The question of constitutionality of delegation of legislative powers came before the Federal Court in **Jatindra Nath Gupta v. Province of Bihar**.<sup>10</sup>

**Brief Facts :** In this the validity of Section of the Bihar Maintenance of Public Order Act, 1948 was challenged on the ground that it authorized the provincial government to extend the life of the Act for one year with such modifications as it may deem fit.

**HELD :** The Federal Court held that the power of extension with modification is unconstitutional delegation of legislative power because it is an essential legislative act. In this manner for the first time it was laid down that in India legislative power cannot be delegated. However Fazal Ali J., in his dissenting opinion held opinion held that the delegation of the power constitutional because according to him, it merely amounted a continuation of the Act.

### **When Supreme Court became highest Court of Appeal**

**IN RE DELHI LAWS ACT CASE<sup>11</sup> :** In order to remove doubts regarding the validity of a number of laws which contained such delegation, the President of India under article 143 of the Constitution asked the Court's opinion on the three questions submitted for its consideration and report<sup>12</sup>. The three questions are as follows :-

- (1) **Was section 7 of the Delhi Laws Act, 1912, or any of the provisions thereof and in what particular or particulars or to what extent ultra vires the Legislature which passed the said Act?**

*Section 7 of the Delhi Laws Act, mentioned in the question, runs as follows:-*

*"The Provincial Government may, by notification in the official gazette, extend with such restrictions and modifications as it thinks fit to the Province of Delhi or any part thereof, any enactment which is in force in any part of British India at the date of such notification."*

This act delegated to the provincial Govt. the power to extend to Delhi area with such restrictions and modification any law in force in any part of British India. *This was held valid by the majority.*

- (2) **Was the Ajmer-Merwara (Extension of Laws) Act, 1947, or any of the provisions thereof and in what particular or particulars or to what extent ultra vires the Legislature which passed the said Act?**

*Section 2 of the Ajmer-Merwara (Extension of Laws) Act, 1947, runs as follows :-*

*"Extension of Enactments to Ajmer-Merwara. - The Central Government may, by notification in the official gazette, extend to the Province of Ajmer-Merwara with such restrictions and modifications as it thinks fit any enactment which is in force in any other Province at the date of such notification."*

This act delegated the power to the Govt to extend to the province with such modifications and restrictions as it may deem fit. This was also held valid by the court.

- (3) **Is section 2 of the Part C States (Laws) Act, 1950, or any of the**



**provisions thereof and in what particular or particulars or to what extent ultra vires the Parliament?**

*Section 2 of the Part C States (Laws) Act, 1950, runs as follows :-*

*"Power to extend enactments to certain Part C States. - The Central Government may, by notification Gazette, extend to any Part C State (Andaman and Nicobar Islands) or to any part of such State, with such restrictions and modifications as it thinks fit, any enactment which is in force in a part A State at the date of the notification and provision may be made in any enactment so extended for the repeal or amendment of any corresponding law (other than a Central Act) which is for the time being applicable to that Part C State".*

Part C were states directly under the control of the Central Govt. without having a legislature of their own and hence, Parliament had to legislate for them. This act delegated the power to the Central Govt. to extend to Part C States with such modification and restriction as it may deem fit any enactment which was in force in any Part A states. It also empowered the Govt. to repeal or amend any corresponding law which was applicable to Part C States. Sec 2 of the Act was held valid but the power to repeal or amendment of any corresponding law which was for the time being applicable to part C was void and was held to be excessive delegation.

**Analysis of Opinion**

*Seven judges presided over the case providing us with 7 different opinions.* The importance of the case cannot be under estimated in as much as, on one hand it permitted delegated legislation while on the other it demarcated the extent of such permissible delegation of power. The question was on the limits to which legislature in India can delegate its legislative power.

There were two extremist views put forth by the counsels : M C Setalvad took the view that power of delegation comes along with the power of legislation and the same does not result in abdication of the powers. The other counsel took the view that there exist separation of powers in the country and India follows *delegates non potest delegare*. Therefore, there is an implied prohibition on delegation of power. As both the views were extremely extremist, the court took the middle view.

The Supreme Court took the following view and the 7 opinions were based on the same:

- I. Doctrine of Separation of power is not a part of the Indian Constitution.
- II. Indian parliament was never considered as an agent of anybody, Therefore, doctrine of '*delegates non potest delegare*' has no application.
- III. Parliament completely cannot abdicate or efface itself by creating a parallel legislative body.
- IV. Power of Delegation is ancillary to the power of legislation.
- V. There is a limitation on delegation of power is that the Legislature can not delegate its essential legislative functions. **Essential function involving**

**laying down the policy of the law and enacting that policy into binding rule of conduct.**

### **Conclusion**

There are no special arrangements in the Constitution of India for delegated legislation, still the current pattern justifies the visionary aim of founding fathers of our Constitution whose principle concern was the flexibility of the constitution to remain in tact with the changing times. In order to make sure that the power of delegated law is not misused by any means, it is important to adopt new innovative and powerful modes of control over delegated legislation as applicable in the other developed countries.

□

### **Footnot**

1. Bharat Bank Vs Employee of Bharat Bank, AIR1950 SC, P. 306
2. Bentham's theory of utility (theory of legislation) P. 1
3. AIR 1979 SC 137 P. 321.
4. C. K. Takwani, Lectures on Administrative Law, (5th Edition) 2012, P. 172.
5. [1896] 1 QB 290
6. (1878) 3 AC 889
7. I. P. MASSEY, Administrative Law, (5th ed. ), Eastern Book co., 2001
8. AIR 1945PC48
9. S. P. SATHE, Principle of Administrative Law, (4th ed. )Wadhwa and Co. Pvt. Ltd. (2002)
10. AIR 1949 FC 175
11. AIR 1951 SC 332
12. C. K. TAKWANI, Lectures on Administrative Law, (4th ed. ), Eastern book Co. (2010)

Richa Shrivastava

---

## Juvenile Justice System in India

*Juvenile delinquency is a serious offence and it is detrimental for the social order in any country. There is a trend of increase in juvenile crimes world-over, with more and more involvement of the youth in violent crimes. India shows similar trends of increasing rate of violent crimes committed by the juveniles. It is a very serious concern for the nation and solutions to end the problem need to be sought very carefully. Indian legal system and judiciary has responded to these trends and has brought some amendments in the laws pertaining to juvenile justice in India.*

*This paper aims at looking at the causes of juvenile delinquency and explanations given by scholars from various fields to explain the problem. The analysis of statistical data available at official sites indicates increasing involvement of the juveniles in heinous crimes. To contain the problem of juvenile delinquency in India, the Act pertaining to Juvenile Delinquency has been amended and now trial of juveniles involved in heinous crimes is held as adults.*

**Keywords :** Delinquency; Juvenile Justice System; Juvenile Justice Act; Juvenile Justice Board.

### 1. Introduction

Children are the rock of any nation on which its future is built. They become the leaders of the country, the creators of national wealth, who care for and protect the human community of the land to which they are rooted. These children across the world develop at different rate and develop different world-view. They increase their ability to think abstractly and develop their own views regarding social and political issues. They develop ability to develop long- term – planning and goal setting. There is also a tendency of making comparison of self with others.

They yearn for separate identity and independence from parents. This is the age when peer influence and acceptance becomes very important. They also develop strong romantic/sexual ideas, and tend to show indulgence in Love and long- term relationships. However, these are normal changes and there are no anomalies generally. Problems arise when these juveniles develop delinquent tendencies, and get into law and order problems. There occurs to be a very strong relationship of crime/deviance with age- according to Hirschi and

Gottfredson (1983), the age-crime relationship is universal. The general observation is that criminality/delinquency peaks in adolescence and diminishes with age. This pattern of crime common across historical, geographical and cultural contexts. Indulgence in conventional crimes is more widespread in teenage and young adults. Most of these offenders disengage from crime after a brief career in crime. However, for some types of crime, there are older peak ages and they decline relatively more gradually. Juvenile crimes have become such common phenomena that they raise serious concern in any nation. In common terminology, juvenile is a child who has not attained a certain age at which he can think rationally and often understand the consequences of his/ her act. Hence, the juvenile can't be held liable for his/her criminal acts. A juvenile delinquent may be regarded as a child who has allegedly committed / violated some law, under which his/her act of commission or omission becomes an offence.

Under the Indian Laws, Section 2 (k) of the Juvenile Justice (Care and Protection of Children) Act, 2015 (referred generally as JJ Act), juvenile is a person who below 16 years. Prior to JJ Act of 2015, the age bar for juveniles was 18 years (Juvenile Justice (Care and Protection of Children) Act, 2000, 2006, 2012). In fact, the age of the juvenile under the Indian legislations has taken variation in temporal and spatial perspectives. It varies from 14 to 18 years under different Indian States.

## **2. Brief Evolution of Juvenile Justice Legislations**

Brief Evolution of Juvenile Justice Legislations in India Some authors have evaluated the origin and development of Juvenile Justice in India (Mousami Dey, 2014). Prior to coming of British in India, the actions of children were governed under existing Hindu and Muslim laws, where the respective families of the person concerned were held responsible for monitoring the actions of their children. In India, the need for new legislations for children was felt under the British rule. Some specific laws were passed between 1850 and 1919, like the Apprentice Act (1850), the Code of Criminal Procedure (1861) and the Reformatory School Act (1876 and 1897). Under the Apprentice Act (1850), it was held that destitute or petty offenders in the age group of 10 and 18 years should be dealt with separately- the convicted children were required to work as apprentices for businessmen. Section 82 of the Indian Penal Code of 1860 also recognized the special status of children. It set age limits on criminal responsibility and excluded children younger than 7 from culpability. The children between 7 and 12 years of age were considered to have sufficient maturity to understand the nature of their actions under certain circumstances. The Code of Criminal Procedure of 1861 allowed for separate trials of persons younger than age 15 and their treatment under the reformatories rather than prisons. It also laid down provisions of probation of the young offenders. Such attempts marked the changing attitude and approach of state to juvenile delinquents, and the transition from penal to reformatory philosophy. In this

regard, the Reformatory School Act, 1876 and 1897 came as harbinger of such legislations. Under the Act, the provisions were laid down for putting the delinquents in the reformatory schools for a period of two to seven years. However, as they attained 18 years of age, they were shifted to adult prisons. Provision for treatment and rehabilitation of young offenders was laid down in the 1897 Act. There was no national legislation under the British rule. However, certain provinces came up with their own legislations to deal with juvenile delinquency (like Bombay, Madras and Pondicherry). After India got independence, Juvenile Justice policy in India got structured around the mandates prescribed under various articles of Indian Constitution (Article 15 (3), 21, 24, 39 (e) & (f), 45 & 47).

The Indian Juvenile justice policy was also guided by various International Covenants such as UN Convention on Rights of Child (CRC) and Beijing Rules, or UN Standard Minimum Rules for Administration of Juvenile Justice. The important law for neglected and delinquent children in India was passed Central Child's Act (1960), which prohibited imprisonment of children under any circumstances. It declared children's courts and child welfare board to be two important bodies that would deal with such children. In 1986, the central government of India passed a central Act, called the Juvenile Justice Act of 1986. It was a social legislation that aimed to provide care, protection, treatment and rehabilitation for delinquent and neglected children. It also looked into adjudication of juvenile matters. It created juvenile courts for the offenders and juvenile welfare boards for the non-offenders/ neglected children. The Juvenile Justice (Care and Protection of Children) Act was passed in 2000. It provided for a uniform legal framework of justice across the country. The main objective of the new Act was to ensure that no child (up to the age 18 years) offender is lodged in jail.

The Act also made provisions for the infrastructure and machinery for care, protection and rehabilitation of children. The Act was again amended in 2006 and then in 2010.

The Juvenile Justice Act, apart from providing for care, protection, rehabilitation and development needs also makes the juvenile adjudication and disposition system child – friendly. It enables the Juvenile Justice Board (earlier called Juvenile Court) in taking a multi disciplinary approach when conducting inquires. Under the Act, Child Welfare Committee has been established to cater to the needs of vulnerable children.

### **3. Important Provisions under the Indian Juvenile Justice Act**

The Juvenile Justice Act, 2000 under section 2 (l) defines juvenile in conflict with law as a juvenile who is alleged to have committed an offence and is under 18 years of age (and above the age of 10 years) on the date of commission of crime. Under the various Indian laws, there is no consensus over the definition of child, which creates confusion and dilemma over the legal treatment of the children. Under section 2 (d) of the same Act, there is another category of

children- "Children in Need for Care and Protection" referred. These children are defined as the ones who are found without any home or settled place or abode and without any ostensible means of subsistence They may be street children/ indulging in beggary, child laborers, orphaned/ abandoned/ destitute children, abused children/ trafficked children, children suffering from physical deformity/ mental illness or victims of conflict and disaster situations. R.N. Choudhary (2005) talks about various laws that are prevalent in reference to juvenile justice in India. S.K. Bhattacharya also discusses about the juvenile justice in India (2000). The need to incorporate the second category of children came from preventive approach of the JJ Act. The children who live under the condition of destitution, or under difficult situations, are very vulnerable to commit crime. Any trigger point in their lives can push the offender button, and they may convert into delinquents. So, keeping up to the philosophy prevention is better than cure, the JJ Act of India has made provisions for both category of children, both who are offenders, or those who are quite likely to indulge in deviant acts. The two category of children are also treated by different institutions-juvenile offenders under the Juvenile Justice Board, and the vulnerable children under the Child Welfare committee. The Juvenile Justice Board consists of a metropolitan judge, or judicial magistrate of first class, and two social workers, at least one of whom should be a woman. Under the Act, there are also provisions for a Special Juvenile Police Unit in every police station. All these personnel must be preferably trained in child psychology, or should have sensitivity in child related matters.

If the juvenile is a co- accused with an adult/ adults, joint trial of the juvenile offender cannot be held along with adult criminals. Further, the Juvenile Justice Act in India restricts the apprehension of juveniles, stipulates bail as a right to the offender, irrespective of the fact that the offence is bailable or not. Further, the trials of the juvenile offenders are held in a very informal manner, where the offender cannot be brought to the Juvenile Justice Board handcuffed. The police officials or other government personnel are dressed informally. The identity of the offender is always concealed, and in no case media can mention the name of the offender in newspapers or on news channels. After the trial, the offenders are kept under the observation homes or Special homes. children in need of care and protection are sent to children's homes.

#### **4. Juvenile Delinquency in India-Current Trends**

The legal definition of child affects how the courts in a country deal with offenders. As per the international norms, and also under the Juvenile Justice System in India, a minor or a child cannot be tried in the same manner as an adult. A child is treated as *doli incapax*, with no mens rea-he/ she is not capable of understanding consequences of his/ her actions.

Keeping this logic in mind, children are dealt under juvenile justice system, and not under the adult criminal justice system. They can never be given imprisonment or death penalty. Hence, under the Indian legal system, Art. 40

(3) (a) of CRC requires State Parties to promote establishment of minimum age below which child is presumed not to have capacity to deviate the penal law. Age of criminal responsibility is held to be 7 years- child below 7 years cannot be considered a child in conflict with law – section 82 of IPC, 1860. Thus, nothing is an offence done by a child between 7 and 12 years, who has not attained sufficient maturity to judge the nature and consequences of his/ her conduct, and did not know that what s/he was doing was wrong - Section 83 of IPC, 1860. However, juvenile delinquency has been increasing in capital city of Delhi and other places in India at an alarming rate. The involvement of the juveniles in serious offences like murder, attempt to murder, kidnapping and abduction has raised concerns in the nation. After the December 2012 Gang rape in Delhi (or Nirbhaya case, as it was commonly called), many debates and discussions pointed to the softer approach of Juvenile Justice System to serious offences. It has been found that the youngsters can be as brutal as the adults, which forced the people to reanalyze the definition and approach to juvenile delinquents in India. Due to access to internet, the psychiatrists feel that aspirations of adolescents and adults are becoming at par (D. Ghosh, 2013). The National Crime Records Bureau (NCRB) data indicates that there has been an increase in crimes committed by juveniles, especially by those in the 16-18 years' age group.

### **Conclusion**

The Juvenile Justice Act of 2016 can be seen as a very progressive step of the Indian government towards keeping pace with changing trends in juvenile crimes. The bold step under the Act on treating the juvenile offenders found guilty of committing heinous crime as adults, subject to the observations of the Juvenile Justice Board. The Justice Verma Committee took a stand against the lowering of age of juveniles in conflict with law. It was observed in the report that "Any attempt of reducing the age of juvenility, or excluding certain children from the purview of the Juvenile Justice (Care and Protection of Children) Act 2000 on the basis of nature of the offence and age, will violate guarantees made under the Constitution and international instruments, the United Nation Convention of Rights of the Child (UNCRC)". But the Supreme Court in India took a stand contrary to the suggestions and warnings of the Committee. It was argued that the age of 18 years was fixed because of the expert notion of psychologists that children/ juvenile up to this age are malleable and can be reformed through redeeming and restoring techniques. It was then argued that putting them with adult criminals would re-socialize them into the world of crime and convert them into hard core criminals. The Indian courts keep this fact in mind when dealing with offenders who are not habitual criminals. The judges don't want to burden the jails with criminals. However, when the latest trends in juvenile delinquency in India are analyzed, in respect of the age pattern and nature of offences committed, it appears that we need to review and amend our juvenile justice policy (Shivani Goswami and Neelu Mehra, 2014). The same kind of trends

appeared in US and UK, with peaking of heinous crimes committed by the juveniles in the age group of 16 to 18 years (McDowell, L. Gary, Smith, Jinney, 1999). US came up with a change in its juvenile justice policy, with a shift from restorative to retributive methods. The same applies to UK also. Here, a person under 18 years is tried by the youth court normally, but in instances of serious offences, the case can be transferred to the Crown court.

In India, it is indicated from the crime trends that existing laws (prior to 2016) were not proving to be a deterrent. The constant exposure of children to violence and lack of understanding about the consequences of crime committed makes them quite prone to delinquent tendencies. The problem gets worsened in absence of some adults in role of responsible guardians to give them and help them in filtering the information that comes to them through various sources. In the face of fast pace of industrialization and globalization, the self-control and parental control that was earlier sufficient to prevent individuals from committing offences has become weak. The primary socialization that functioned through groups such as family, peer groups, traditional neighbourhood ties, close kin circles is fast becoming ineffective in Indian society. All this has led to present trends in juvenile delinquency. It is to be kept in mind that the legal sub-system is a part of the larger social system. Thus, when changes are occurring in the society at a fast pace, the legal system has to go in sync with the society. The Juvenile Justice (Care and Protection) Act 2015 has brought these changes.

□

### **References**

1. Cloward, R. and Ohlin, L. (1960), *Delinquency and Opportunity*. NY: Free Press
2. Cohen, A.K. (1955), *The Delinquent Boys* Glencoe, The Free Press
3. *Crimes in India*, (2015), National Crime Records Bureau, Ministry of Home Affairs, Government of India, New Delhi.
4. *Apprentices Act, 1850*
5. Bhattacharya, S.K. (2000), *Juvenile Justice : An Indian Scenario*, New Delhi, Regency Publications.
6. BRANDT, David (2006), *Delinquency, Development, and Social Policy*. London, Yale University Press.
7. Choudhary, R.N. (2005), *Law relating of juvenile justice in India*. Allahabad, Orient Publishing Company.
8. Chung, Le Hen, and Lawrence Steinberg, (2006), *Relations Between Neighborhood Factors,*
9. *Parenting Behavior, Peer Deviance and Delinquency Among Juvenile Offenders.*
10. *Development Psychology*. March 42 (2): 319-331 <https://doi.org/10.1037/0012-1649.42.2.319>
11. *Code of Criminal Procedure (Amendment) Act, 2010*





फोन : 011-27491549  
मोबाइल : 09899651272  
09899651872

### सदस्यता फॉर्म

### विधि भारती परिषद्

बीएच-48 (पूर्वी) शालीमार बाग, दिल्ली-110088

महिला विधि भारती पत्रिका यू.जी.सी. की सूची में भी शामिल है।  
क्रमांक 156, पत्रिका संख्या 48462

कृपया मुझे विधि भारती परिषद् का सदस्य बनाने की कृपा करें। मेरा बैंक/बैंक ड्रॉफ्ट संलग्न है --

- |                                 |                |
|---------------------------------|----------------|
| 1. वार्षिक सदस्य शुल्क          | 500/-- रुपए    |
| 2. आजीवन सदस्य शुल्क            | 5,000/-- रुपए  |
| 3. संस्थागत वार्षिक सदस्य शुल्क | 500/-- रुपए    |
| 4. संस्थागत आजीवन सदस्य शुल्क   | 20,000/-- रुपए |

नाम : .....

शैक्षिक योग्यता : .....

व्यवसाय : .....

कोई प्रकाशित कृतियाँ : .....

स्थायी पता : .....

फोन (कार्यालय) : ..... (घर) : .....

मोबाइल : ..... ई-मेल : .....

**नोट :** विधि भारती परिषद् की सदस्यता के लिए शुल्क परिषद् के बैंक खाते में जमा कराया जा सकता है। कृपया शुल्क के साथ बैंक सेवा चार्ज 100/-- रुपए जमा कराएँ।

**Vidhi Bharati Parishad** : SBI SB Account No. 10115361055

IFSC Code : SBIN0003702

### विधि भारती परिषद् के महत्त्वपूर्ण प्रकाशन

1. अनुवाद के नये परिप्रेक्ष्य, लेखक : सन्तोष खन्ना, मूल्य : 500/- रुपए
2. हिंदी और भारतीय साहित्य में महिला सरोकार, सं. : सन्तोष खन्ना, 2016, मूल्य : 450/- रुपए
3. सामाजिक-विधिक सरोकारों की संस्कृति, लेखिका : सन्तोष खन्ना, 2012, मूल्य : 77/- रुपए
4. इतिहास बनता समय, लेखिका : सन्तोष खन्ना, 2012, मूल्य : 300/- रुपए
5. 'क्या पाया? क्या खोया?' (कहानी-संग्रह), डॉ. उषा देव, मूल्य : 200/- रुपए
6. रोशनी, (उपन्यास), लेखिका : सन्तोष खन्ना, 2013, मूल्य : 410/- रुपए
7. 'संग्राम शेष है' (कहानी-संग्रह), डॉ. उषा देव, मूल्य : 250/- रुपए
8. 21वीं शती में नारी : क़ानून और सरोकार, मूल्य : 350/- रुपए
9. 'क्या मैं ग़लत थी?' (कहानी-संग्रह), डॉ. उषा देव, मूल्य : 200/- रुपए
10. 21वीं शती में मानव अधिकार : दशा और दिशा, मूल्य : 250/- रुपए
11. भारत का संविधान : अनुचितन के नये क्षितिज, मूल्य : 250/- रुपए (उपलब्ध नहीं है)
12. भारतीय क़ानूनों का समाजशास्त्रा, सन्तोष खन्ना, मूल्य : 500/- रुपए (विधि, न्याय मंत्रालय द्वारा पुरस्कृत)
13. Dimensions of Environmental Law, Ed. Santosh Khanna, Price : 400/-Rs.
14. Reappraisal of the Constitution, Ed. Santosh Khanna, Price : 350/-Rs.
15. Human Rights Today, Ed. Santosh Khanna, Price : 500/-Rs.
16. The Consumer Protection Law and the Rights of Consumers Ed. Santosh Khanna, Price : 400/-Rs.
17. स्मृतियाँ (कहानी-संग्रह) लेखक : अखतरुल हनीफ, विधि भारती परिषद्, मूल्य : 100/- रुपए
18. उपभोक्ता संरक्षण क़ानून और न्याय, मूल्य : 250/- रुपए
19. 'साक्षी' (कविता-संग्रह), सन्तोष खन्ना, मूल्य : 60/- रुपए
20. 'भावी कविता' (कविता-संग्रह), सन्तोष खन्ना, मूल्य : 120/- रुपए
21. 'संत जोन', (नाट्यानुवाद), सन्तोष खन्ना, मूल्य : 245/- रुपए
22. पर्यावरण एवं पर्यावरण संरक्षण क़ानून, सं. सन्तोष खन्ना, मूल्य : 200/- रुपए
23. 'तुम कहो तो!' (मौलिक नाटक) नाटककार : सन्तोष खन्ना, मूल्य : 125/- रुपए
24. 'कजरी' (कथा-संग्रह) लेखिका : डॉ. उषा देव, मूल्य : 175/- रुपए
25. 'द्वैपदी जिंदा है' (कथा-संग्रह) लेखिका : डॉ. उषा देव, मूल्य : 150/- रुपए
26. 'खुशी के पल' (कथा-संग्रह) डॉ. सरस्वती बाली, मूल्य : 150/- रुपए (हिंदी अकादमी द्वारा पुरस्कृत)
27. सूचना का अधिकार अधिनियम : कार्यान्वयन और चुनौतियाँ, सं. सन्तोष खन्ना, मूल्य : 250/- रुपए
28. 'अब की लड़का नहीं' (कहानी-संग्रह) लेखिका : डॉ. उषा देव, मूल्य : 250/- रुपए
29. 'आज का दुर्वासा!' (कहानी-संग्रह), लेखिका : सन्तोष खन्ना, मूल्य : 250/- रुपए
30. 'सन्धि-पत्रा' (कहानी-संग्रह), लेखिका : डॉ. उषा देव, 2011, मूल्य : 300/- रुपए
31. 'भारत की संसद और सामाजिक सरोकार', सं. सन्तोष खन्ना, 2011, मूल्य : 350/- रुपए
32. 'सब सुंदर है!' (कहानी-संग्रह), लेखिका : डॉ. उषा देव, 2012, मूल्य : 300/- रुपए
33. Birbhadra Karkidholi : The Flight of a Skylark, Ed. Prof. Om Raz, 2017, 300/-
34. 'समय का सच' (कविता-संग्रह), सन्तोष खन्ना, मूल्य : 250/- रुपए
35. भारत में चुनाव, हिंदी की भूमिका और चुनाव सुधार, सं. सन्तोष खन्ना, मूल्य : 250/- रुपए
36. सेतु के आर-पार, (नाटक) नाटककार : सन्तोष खन्ना, मूल्य : 300/- रुपए

पुस्तकें मिलने का पता : विधि भारती परिषद्

बी.एच/48 (पूर्वी), शालीमार बाग, दिल्ली-110088

टेलीफोन : 011-27491549, मोबाइल : 9899651872, 9899651272